योगविद्या

वर्ष 4 अंक 5
मई 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, नेपाल, 2014

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 2: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती; 3-8: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की नेपाल योग यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

विचार शक्ति

व्यक्ति को सम्यक् विचारों का पोषण करना चाहिए तथा सभी प्रकार के व्यर्थ एवं नकारात्मक विचारों को निकाल फेंकना चाहिए। जो व्यक्ति बुरे विचारों को पनपने देता है वह अपने आपको तथा अपने वातावरण, दोनों को हानि पहुँचाता है। वह विचार-संसार को दूषित करता है। उसके बुरे विचार सुदूर व्यक्तियों के मन में भी प्रवेश करते हैं, क्योंकि विचार तडित-वेग से चलते हैं।

सभी प्रकार के रोगों के कारण बुरे विचार हैं। सभी रोग सर्वप्रथम एक अशुद्ध विचार से जन्म लेते हैं। जो उदात्त और दिव्य विचारों को मन में रखता है वह अपनी तथा संसार की भी असीम भलाई करता है। वह सर्वत्र सान्त्वना, आशा, शान्ति एवं प्रसन्नता प्रसारित कर सकता है।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 5 · मई 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित काठमाण्डू योग महोत्सव को समर्पित है

4 नेपालवासियों के नाम संदेश
7 भावनाओं के दिशान्तरण हेतु भक्तियोग
14 देवता, दानव और मनुष्य
16 भक्ति का मार्ग
24 व्यावहारिक योग साधना
26 कर्मयोग का मर्म
44 मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य
51 सत्कर्म का परिणाम
52 सार्थक सीखें
56 आध्यात्मिक नेपाल की खोज
58 योग युग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

नेपालवासियों के नाम संदेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जब यहाँ नेपाल में योग कार्यक्रम की संभावना बनी थी, तब उसी समय हमने यह निर्णय लिया था कि यहाँ पर हम योग प्रचार करने के लिये नहीं, बल्कि अपनी गुरुमाता की पावन मातृभूमि में अपनी श्रद्धा निवेदित करने आ रहे हैं। इस कार्यक्रम में जो चार दिन आपके साथ बीते हैं, उनमें हमें ऐसा अनुभव हुआ है कि नेपाल के निवासी संस्कृति और संस्कार के क्षेत्र में आगे हैं। जब किसी सभ्यता में संस्कृति और संस्कार खत्म होते हैं तब उस सभ्यता का नाश भी होता है। विश्व का इतिहास इस बात का गवाह है कि जिस-जिस सभ्यता की संस्कृति और संस्कारों का ह्रास हुआ है, वह सभ्यता आज इस धरती पर नहीं है। लेकिन जिस सभ्यता में संस्कृति और संस्कार हैं, वह विषम परिस्थितियों और संघर्षों से जूझते हुए भी अपने अस्तित्व को कायम रखे हुए है। नेपाल में हमने यह अनुभव किया कि आपके जीवन में संस्कृति है, संस्कार है और हमें विश्वास है कि इसके बल पर आपकी विजय होगी और आपके राष्ट्र में सुख, शांति, समृद्धि और ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होगा।

इस संस्कृति और संस्कार को दृढ़ करने के लिये पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। बाहर में नहीं, बल्कि अपने भीतर और इस भीतरी पुरुषार्थ को करने के लिये हमें योग का सहारा लेना पड़ेगा। आज के इस युग में योगविद्या की आवश्यकता मनुष्य के मन, भावनाओं और कर्मों को व्यवस्थित करने के लिये है। योगविद्या की

आवश्यकता मोक्ष या आत्मज्ञान के लिये नहीं, बल्कि अपने व्यवहार, विचार और कर्मों को परिष्कृत करने के लिये है। जब हमलोग योग को अपनी संस्कृति और संस्कार का आधार बनायेंगे, दुनिया की कोई भी शक्ति हमें हिला नहीं पायेगी। यही विचार हमारे परमगुरु स्वामी शिवानंदजी एवं हमारे गुरु स्वामी सत्यानंद जी का था, और आज उन्हीं के विचारों को मैं आपके सामने रख रहा हूँ ताकि आप भी इन विचारों को अपनायें और अपनी संकल्प शक्ति को जागृत कर अपने संस्कार और अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें। तभी आपका समाज और राष्ट्र उन्नति के पथ पर आगे बढ़ेगा और सुरक्षित रहेगा।

यह योग महोत्सव तो एक परिचय है और हम आशा करते हैं कि भविष्य में यहाँ आने के और भी अवसर मिलेंगे ताकि आपको इस योगविद्या के साथ जोड़ सकें और योग को संस्कृति के रूप में अपने जीवन में उतार सकें। यह विद्या केवल शारीरिक अनुभव नहीं, बल्कि उत्थान और विकास का सर्वांगीण अनुभव है। अपने संस्कार और संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये इसी सर्वांगीण अनुभव की प्राप्ति हमलोगों को करनी है।

बिहार नेपाल से ज्यादा दूर नहीं है। वास्तव में हम आपके पड़ोसी हैं। जब पड़ोस में हैं तो फिर क्यों नहीं हम हर दो साल में कुछ दिनों के लिये यहाँ पर आने का प्रयास करें। अगर दूर देश में रहते तो हो सकता था कि और समय बीतता, लेकिन पड़ोस में रहकर हमारी इच्छा है कि हम यहाँ पर आपलोगों की सेवा में बराबर उपस्थित हों।

अभी यहाँ पर हमारी परम्परा में प्रशिक्षित कुछ शिक्षक हैं, लेकिन इन शिक्षकों को कोई दिशा-निर्देश नहीं है। इनका अपना घर-परिवार है, अपनी महत्त्वाकांक्षा और आवश्यकता है। ये अपने प्रयोजन से योग से जुड़े हैं और यहाँ स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं। हमें तो यह भी नहीं मालूम कि वे यहाँ पर सिखाते क्या हैं। हम केवल इतना विश्वास करके चल रहे हैं कि वे हमारी परम्परा के योग को ही सिखा रहे हैं। इससे अधिक हम अपने शिक्षकों के बारे में नहीं जानते, अगर वे गलत भी करते हैं तो इसकी जानकारी हमको नहीं है।

इसलिये हमने यह भी एक निर्णय लिया है कि चाहे यहाँ पर हजारों शिक्षक क्यों न हों, हमारा एक अपना केन्द्र इस धरती पर अवश्य बनेगा, जिसका संचालन सीधे मुंगेर के माध्यम से होगा। उस केन्द्र में केवल आसन-प्राणायाम की नहीं, समग्र योगविद्या की शिक्षा होगी। इस धरती को हम यह वचन देते हैं।

हमारे गुरुजी का यह संकल्प है कि हमारी संस्था योगविद्या को व्यवसाय के रूप में नहीं चलाएगी। हमारा काम विद्या का, प्रेम का, स्नेह का, ईश्वर अनुग्रह का आदान-प्रदान है। इसलिये एक दिन हम इस धरती पर बिहार योग विद्यालय का झण्डा अवश्य गाड़ेंगे और वह स्वतंत्र रूप से यहाँ चलेगा। चाहे सौ शिक्षक

रहें और उनके हजारों आश्रम रहें, उनसे हमें मतलब नहीं। बिहार योग विद्यालय के अंतर्गत इस संस्था का यहाँ स्वतंत्र रूप से संचालन होगा और इस संस्था के माध्यम से यहाँ की संस्कृति एवं संस्कार को मजबूत बनाने का प्रयत्न करेंगे। जब यह संभव होगा तो इस संगठन के माध्यम से इस राष्ट्र के विकास और उन्नति का भी एक सुन्दर स्वप्न देख पायेंगे। केवल देखेंगे ही नहीं, उसे यथार्थ में परिवर्तित करेंगे। ऐसा हम सबका संकल्प होना चाहिये।

आज इस सत्र का अंतिम अधिवेशन है और अपनी ओर से हम आप सबको साधुवाद देते हैं कि आपने हम पर, इस विद्या पर विश्वास करके हमलोगों का साथ इन चार दिनों तक दिया है। इसके लिये हम अपना आभार प्रकट करते हैं और केवल यही प्रार्थना करते हैं कि अपने जीवन में योग को एक अवसर अवश्य दें ताकि आपका जीवन एक सुन्दर उद्यान के रूप में बदल सके। यही हमारे गुरुजी का आशीर्वाद और वरदान भी है।

–7 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

भावनाओं के दिशान्तरण हेतु भक्तियोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी कहा करते थे कि हर व्यक्ति अपने जीवन में सफलता चाहता है, दु:ख की निवृत्ति चाहता है, सुख और संतोष प्राप्त करना चाहता है, अपना और अपने परिवार का कल्याण चाहता है, और इसके लिये वह जो भी प्रयत्न करता है उसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी बुद्धि, भावना और कर्मों को व्यवस्थित रखे। जब हमारी बुद्धि, हमारी भावना और हमारे कर्मों में सामंजस्य रहता है तब जीवन में हर प्रकार के पुरुषार्थ सफल होते हैं, और हमें सुख एवं वैभव की प्राप्ति होती है। यह स्वामी शिवानंद जी का दृष्टिकोण रहा है और उन्होंने योग के द्वारा बौद्धिक, भावनात्मक और कर्मों की रचनात्मक क्षमता बढ़ाने का लक्ष्य हम सबके सामने रखा है।

इसी क्रम में हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी ने स्वामी शिवानंद जी के विचारों को और व्यावहारिक बनाकर एक साधना के रूप में हमलोगों के सामने प्रस्तुत किया है, जिसे अपनाकर हम अपने जीवन में पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे इन दो गुरुओं के विचारों के अनुसार शरीर माध्यम है जिसके द्वारा सभी कर्तव्यों का निर्वाह हो सकता है, सभी धर्मों का पालन हो सकता है। लेकिन इस शरीर के साथ हमें अपने मन, अपनी भावनाओं और अपने कर्मों को साथ लेना पड़ता है। जिस योगविद्या की चर्चा हम पिछले दो दिनों से आपके सम्मुख कर रहे हैं, वह इसी विचार शृंखला पर आधारित है।

पहले दिन हमने आपको हठयोग के बारे में बतलाया और हठयोग के विविध अभ्यासों की जानकारी दी, जिनके द्वारा अपने शरीर को ऊर्जा और स्वास्थ्य से युक्त करके, अपने सभी कर्तव्यों और कर्मों का सम्पादन किया जा सकता है। एक स्वस्थ, ऊर्जावान् शरीर हमारी मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक उन्नति में सहायक बनता है।

उसके पश्चात् राजयोग के संदर्भ में हम आपको मन के बारे में बतला रहे थे कि किस प्रकार हमारा मन छ: मित्रों के सहयोग से अपने जीवन की दिशा का निर्माण करता है। ये छ: मित्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य हैं, और यही हमारे जीवन में तनाव, परेशानी, चिन्ता और व्याधि के कारण बनते हैं। राजयोग का प्रयोजन मन की इन्हीं विषम अभिव्यक्तियों को संतुलित बनाना है ताकि मन स्थिर एवं शांत हो और हमें वैचारिक स्पष्टता, रचनात्मकता एवं एकाग्रता की प्राप्ति हो। यह है राजयोग का विषय जिसका संबंध मन और बुद्धि के साथ है।

भावनाओं का प्रबंधन

आज जिस विषय पर हम चर्चा करने वाले हैं उसका संबंध भावना के साथ है। भावना और मन अथवा हृदय और मस्तिष्क, ये दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं होते, बल्कि एक-दूसरे के सहायक हैं, पूरक हैं। जब आपके मन में कोई विचार आता है तब वह आपकी भावना को भी प्रभावित करता है। आपकी भावनाएँ आपके विचारों और इच्छाओं से अलग नहीं, बल्कि वे उन्हें पुष्ट बनाती हैं, मजबूत करती हैं। इसलिये हम मस्तिष्क और हृदय को अलग नहीं कर सकते, दोनों को साथ लेकर चलना है।

भावनाओं को एक सही दिशा प्रदान करने के लिये जो योग है उसे कहते हैं भक्तियोग। पहले आप यह समझ लीजिये कि भक्ति किसे कहते हैं। भक्ति की दो परिभाषाएँ हैं। पहली परिभाषा के अनुसार भक्ति वह प्रक्रिया है जो आपको ईश्वर से जोड़ती है, और भक्ति की दूसरी परिभाषा यह कि वह आपकी भावनाओं को निर्मल, पवित्र और शुद्ध बनाती है। धर्म ने भक्ति के ईश्वर-आराधना स्वरूप को स्वीकार किया, जबकि योग ने भक्ति को भावनात्मक शुद्धि के रूप में स्वीकार किया है।

हमारे गुरुजी कहा करते थे कि स्फटिक पत्थर का अपना कोई रंग नहीं होता, वह पारदर्शी है, लेकिन जब उस स्फटिक को किसी रंगीन वस्त्र के ऊपर रख दिया जाता है तब उसमें रंगीन वस्त्र का रंग दिखायी देने लगता है। इसका यह मतलब नहीं कि पत्थर का वह रंग है। पत्थर हमेशा पारदर्शी रहता है, लेकिन जिस किसी चीज के संपर्क में आता है उस रंग को अपने भीतर दर्शाता है।

ऐसी ही स्थिति हमारी भावनाओं के साथ होती है। हमारी भावना का कोई रंग नहीं होता, वह भी स्फटिक पत्थर की तरह पारदर्शी और स्पष्ट है। लेकिन जब हमारी भावना किसी भौतिक विषय के संपर्क में आती है, तब उस विषय का रंग भावना के भीतर दिखलायी देता है। अगर आपको सड़क पर रुपयों का एक बंडल दिखलायी दे तो मन में लोभ उत्पन्न होगा। वह लोभ आपको प्रेरित करता है कि मैं इस बंडल को उठा लूँ और अपने साथ ले चलूँ। इसी प्रकार जब आप अपनी संतान को देखते हो तो भावना में स्नेह की उत्पत्ति होती है। जब आप अपने शत्रु को देखते हो तो भावना में शत्रुता पैदा होती है। जब आप अपने से सफल व्यक्ति को देखते हो, तो भावना में ईर्ष्या प्रकट होती है।

जब हमारे हृदय की भावना संसार के विषयों की ओर प्रवाहित होती है और उनसे अपना संबंध जोड़ती है तब उस समय भावों में लोभ, द्वेष, घृणा आदि प्रकट होते हैं, और जब इसी भावना को हम संसार से हटाकर अंतरात्मा की तरफ मोड़ते हैं तब उसका रूप होता है भक्ति का। अपनी भावनाओं को संसार से हटाकर अंतरात्मा की ओर ले जाने को ही भक्ति कहते हैं।

धर्म कहता है कि भक्ति अपने आपको ईश्वर से जोड़ना है और योग कहता है कि भक्ति आत्मशुद्धि की स्थिति है। अंतर होते हुए भी दोनों विचारधाराएँ एक हैं।

गीता के बारहवें अध्याय के अंतिम आठ श्लोकों में श्रीकृष्ण ने भक्ति को परिभाषित किया है। भक्त का जो पहला लक्षण श्रीकृष्ण बतलाते हैं, वह है *अद्वेष्टा सर्वभूतानां*। वे यह नहीं कहते कि भक्त वह है जो मेरे नाम का गान करता है, जप करता है। वह एक विचारधारा अवश्य है, लेकिन यहाँ पर मैं धार्मिक व्याख्या की नहीं, कृष्णजी की व्याख्या की बात कर रहा हूँ। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥12.13॥

जो व्यक्ति किसी से द्वेष नहीं करता, सभी प्राणियों में एक तत्त्व को ही देखता है, जो मित्रता और करुणा के भावों से युक्त है, जो मेरेपन और स्वार्थ की भावना से मुक्त है, जो अहंकार-रहित है, जिसके भीतर कोई दंभ या घमंड नहीं, जो सुख और दुःख में हमेशा समभाव रखता है, और जिसके जीवन में क्षमा एक गुण के रूप में अभिव्यक्त होता है, ऐसा ही भक्त मुझे प्रिय है। इस प्रकार आठ श्लोकों में श्रीकृष्ण आदर्श भक्त के लक्षण बतलाते हुए समझाते हैं कि भक्ति कैसी होनी चाहिये।

ईश्वर-आराधना अपनी जगह ठीक है, वह भक्ति की धार्मिक परम्परा है, लेकिन आत्मशुद्धि की स्थिति वास्तविक है, क्योंकि उसी से हम अपने भावों को अपनी अंतरात्मा की ओर, अपने भीतर स्थित परमात्मा की ओर दिशान्तरित कर सकते हैं। जब भक्ति के बारे में हम इस प्रकार की व्याख्या पढ़ते हैं, तब अंदाज लगता है कि भक्ति केवल भगवद्-भजन नहीं है, केवल भगवन्नाम की आराधना नहीं है, बल्कि आत्मशुद्धि को प्राप्त करने और अपने भावों को सम करने की एक विधि है। तब जाकर योग में आप भक्ति के महत्त्व को समझ पायेंगे।

आत्मभाव

भक्तियोग में साधना अनेक प्रकार की होती है, लेकिन हमारे गुरुजी के अनुसार इसमें जो सर्वश्रेष्ठ साधना है वह है आत्मभाव की। आत्मभाव का मतलब जो परमतत्त्व मेरे भीतर है, उसी परमतत्त्व को मैं दूसरों में देखता हूँ। एक उदाहरण देता हूँ। आपका बेटा अपने कुछ मित्रों के साथ यात्रा कर रहा है और दुर्घटना हो जाती है। वे सब अस्पताल में पहुँचाए जाते हैं। आपको अस्पताल से फोन आता है। आप दौड़ते हुए जाते हैं और उस समय आपके मन में केवल अपने बेटे का ही ख्याल रहता है। हो सकता है आपके बेटे को केवल खरोंच लगी हो जबकि उसके मित्र का पैर टूट हो गया हो, लेकिन आपको चिन्ता अपने बेटे की खरोंच की रहेगी, दूसरे के पैर का जो फ्रैक्चर हुआ है उसकी चिन्ता आपको नहीं रहेगी। बेटे में आप खुद को देख रहे हैं, अपनी आत्मा को देख रहे हैं, इसलिये उसके साथ एक भावनात्मक संबंध जुड़ा है। लेकिन दूसरा व्यक्ति जो आपके बेटे से भी

ज्यादा घायल है, उसके प्रति आपके मन में कोई विशेष संवेदना नहीं होगी। थोड़ी बहुत करुणा जरूर होगी, 'हाय, बेचारा' कह देंगे, लेकिन दु:ख नहीं होगा, क्योंकि आप दूसरे में स्वयं को नहीं देख पाते हो। आप केवल अपनों में ही खुद को देख पाते हो, क्योंकि उनके प्रति मेरापन है, ममत्व की भावना है।

जहाँ भी मेरा का संबंध होता है, वहाँ आत्मभाव दिखलाई देता है, लेकिन जब मेरापन का यह संबंध अपने परिवार तक ही सीमित रहता है, तब वह स्वार्थ का रूप ले लेता है, और जब वह मेरापन दूसरों से जुड़ जाता है, तब वह नि:स्वार्थ भाव का रूप लेता है। हमारे गुरुजी कहते थे कि जीवन का अंतिम उद्देश्य इस आत्मभाव को प्राप्त करना है। वही योग की अंतिम परिणति है, समाधि या मोक्ष नहीं। आत्मभाव की प्राप्ति से हम अपने आपको अपने समाज और अपने आराध्य के साथ जोड़कर अपने आराध्य को सभी प्राणियों में देखने लगते हैं। लोग कहते हैं कि ईश्वर सबमें है, लेकिन क्या आपने कभी दूसरों में बैठे ईश्वर का सम्मान किया है? पत्थरों के सामने जाकर तो आप सिर झुका देते हो, लेकिन जो जीवित भगवान आपके सामने बैठा है क्या कभी उसका सम्मान-सत्कार किया है? अगर नहीं किया है तो फिर यह बात मत कहो कि सबके भीतर भगवान बैठा है। यह तुम्हारे सिद्धांत का दोष है।

हमारे गुरुजी कहते थे कि आदमी अपने लिये जूता खरीदने के लिये बिना किसी मोल-तोल के दस हजार रुपये खर्च सकता है, लेकिन किसी की भूख मिटाने के लिये दस रुपये देने में भी वह हिचकिचाता है। कहता है कि इसे क्यों दूँ, यह तो अपना कर्म भोग रहा है। क्या यही तुम्हारे भीतर की मानवता और भक्ति है कि तुम अपने स्वार्थ के लिये सब सुख चाहते हो पर दूसरों के दु:ख दूर करने के लिये एक क्षण भी प्रयास नहीं करते? जब कोई आदमी भूखा रहता है तब यह मानकर चलो कि उसके भीतर बैठा भगवान भी भूखा है। जब कोई आदमी दु:खी रहता है तब यह मानकर चलो कि उसके भीतर बैठा भगवान भी दु:खी है। अगर तुममें भक्ति है तब तुम दूसरों के भीतर बैठे उस परमतत्त्व के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हुए उस व्यक्ति के उत्थान में अपना योगदान दोगे। यही है भक्तियोग का वास्तविक रूप, आत्मभाव।

हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंदजी कहते थे कि तुम योग द्वारा किसी तरह समाधि और मोक्ष प्राप्त करके यदि भगवान के दरबार पहुँच भी जाओगे तो भगवान कहेंगे, 'बेटा, तुम दरबार के अंदर नहीं आ सकते।' तुम कहोगे, 'भगवान, मैंने तो आपकी कृपा पाने के लिये बहुत साधना की है, बहुत परिश्रम किया है।' भगवान कहेंगे, 'बेटा, तुमने परिश्रम अवश्य किया है, लेकिन अपने स्वार्थ के लिये। तुम अपनी ही मुक्ति चाहते हो, अपना ही कल्याण चाहते हो, यह तुम्हारा स्वार्थ है। अगर तुम वास्तविक रूप से मेरे भक्त हो तो वापस जाओ और दूसरों की सेवा

करके उनके जीवन से दु:ख मिटाने का प्रयास करो।' यह कहकर वे तुम्हें वापस भेजेंगे, स्वर्ग में प्रवेश नहीं देंगे।

आप संतों के जीवन को देखिये। वे कहते हैं, 'मुझे राज्य, सम्पत्ति, नाम या यश नहीं चाहिये, मेरी केवल एक ही कामना है कि मैं इस संसार में दीन-दुखियों की सेवा निरंतर करते रहूँ।' हमारे गुरुजी भी कहते थे कि मैंने अपने मोक्ष और कल्याण के लिये संन्यास नहीं लिया है, बल्कि इस संकल्प के साथ लिया है कि दूसरों के जीवन में जो दु:ख और कष्ट है, उसे मैं मिटाऊँगा। मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं ईश्वर का सान्निध्य नहीं चाहता, बल्कि बार-बार इस धरती पर आकर लोगों की आँखों से दु:ख के आँसुओं को हटाना चाहता हूँ। जब इस संसार में हर व्यक्ति प्रसन्न होगा तब मैं मानूँगा कि अपने जीवन के कर्मों को ठीक तरीके से निभाया है। वही मेरे जीवन की उपलब्धि होगी।

यह हमारे गुरुजी का चिंतन है और इसी को कहते हैं भक्ति, जिसमें हमारी भावना शुद्ध हो जाती है और स्वार्थ से मुक्त हो जाती है। तब भावना और बुद्धि में एक सुन्दर सामंजस्य की स्थापना होती है, जिसका परिणाम हम अपने व्यवहार और कर्म में देखते हैं।

बहिरंग और अंतरंग साधना

भक्तियोग की साधना दो तरह की होती है, एक बहिरंग और दूसरी अंतरंग। भक्तियोग की साधना शुरू होती है बहिरंग साधना से, जिसके आधार हैं मंत्र-जप और कीर्तन जैसे बाह्य अभ्यास। जब हम मंत्र का जप करते हैं तब मनोवैज्ञानिक स्तर

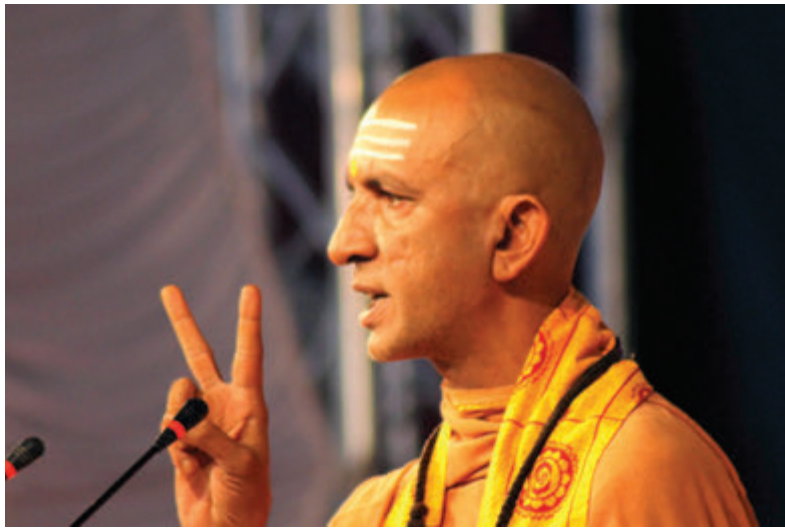

पर अपने मन की विक्षिप्तता को शांत करके अपने इष्ट पर केन्द्रित कर देते हैं। जप अपनी भावनाओं को अंदर मोड़ने की प्रक्रिया है। जब तक आप किसी मंत्र का जप कर रहे हो, चाहे वह *ॐ नमः शिवाय* हो या *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय*, आपका मन आपके आराध्य के साथ जुड़ा रहता है। आपके और आपके इष्ट के बीच एक पुल का निर्माण होता है और आप उस पुल पर चढ़कर अपने आराध्य तक पहुँच पाते हो। यह है जप, कीर्तन आदि का परिणाम और इसे कहते हैं बहिरंग साधना।

भक्ति का जो अंतरंग अभ्यास होता है उसमें प्रथम चरण है सेवा, दूसरा चरण है प्रेम और तीसरा चरण है दान। इन तीनों से प्राप्ति होती है आंतरिक शुद्धता की। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी कहते हैं कि सेवा भक्ति का प्रथम चरण है क्योंकि जब हम सेवा करते हैं तो किसी के प्रति करुणा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि उसके भीतर ईश्वर को देखते हुए उस ईश्वर की सेवा कर रहे हैं। सेवा प्रेम के बिना पूर्ण नहीं होती। सेवा तब होती है जब कर्म में प्रेम जुड़ता है। घर में जब बेटा बीमार होता है तो माँ को नींद नहीं आती। बेटे के बगल में बैठे रहती है, रातभर उसके सिर को सहलाते रहती है, उसे सांत्वना देते रहती है। अगर प्रेम नहीं होता तो क्या माँ ऐसा करती? नहीं। सेवा और प्रेम, ये दोनों एक साथ जाते हैं और जहाँ पर प्रेम होता है वहाँ पर हर प्रकार का बलिदान भी होता है। सेवा, प्रेम और दान—इनसे हमारी अंतरात्मा, हमारा हृदय शुद्ध होता है। जब हमारा हृदय शुद्ध हो जाता है, तब हम द्वैत नहीं देखते, बल्कि सभी को अपने परिवार के सदस्य के रूप में देखते हैं। तब जाकर मनुष्य के जीवन में अच्छाई का, सद्गुणों का अवतरण होता है।

श्री स्वामीजी का प्रेरक जीवन

भक्तियोग की साधना का यह क्रम हमारे गुरुजी के जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। योग के कार्यों को सम्पन्न करने के बाद, अपनी सभी उपलब्धियों का, आश्रम का त्याग करके वे पुनः परिव्राजक के रूप में निकल गये और अज्ञात साधु के रूप में उन्होंने सिद्ध तीर्थों का भ्रमण किया। उस समय वे पशुपतिनाथ जी के दर्शन के लिये काठमाण्डू भी आये थे। हवाई जहाज या गाड़ी से नहीं, एक सामान्य व्यक्ति की तरह बस से। उनका मानना था कि मैंने जो काम किया वह गुरु के निर्देशानुसार किया, जब वह काम समाप्त हो गया तो मेरा उस पद, संस्था और मिशन से कोई संबंध नहीं। मैं पहले भी साधु था और आज भी साधु हूँ।

भारत और नेपाल के सिद्ध तीर्थों का भ्रमण करके वे बिहार के ऐसे क्षेत्र में जाकर बसे जो बहुत उपेक्षित और पिछड़ा हुआ था। जब वहाँ पर गुरुजी साधना कर रहे थे तब उन्हें अंतरात्मा की आवाज सुनाई पड़ी, 'सत्यानंद! मैंने जो सुविधा तुम्हें प्रदान की है, वही सुविधा तुम अपने पड़ोसियों को प्रदान करो।' जब स्वामीजी ने इस आंतरिक आदेश को सुना तब उन्होंने हम संन्यासियों को बुलाया और कहा, 'मुझे ऐसा आदेश

हुआ है, पर मैं तो सब त्याग चुका हूँ, मेरे पास अब फूटी कौड़ी भी नहीं है। इसलिये मैं तुमलोगों को जिम्मेवारी देता हूँ कि तुम भगवान के इस आदेश को पूर्ण करो।'

उन्होंने तब मार्ग बताया कि किस प्रकार सेवा, प्रेम और दान के द्वारा हम अपने समाज के उत्थान के लिये कार्य कर सकते हैं। योग की एक सीमा होती है, जो व्यक्ति तक ही सीमित होती है। हम योग करते हैं स्वयं को शुद्ध बनाने के लिये, अपने जीवन को ऊर्जान्वित करने के लिये, लेकिन जब इस योग शिक्षा को व्यवहार में लाना है तो फिर अपने आपको कर्म से जोड़ना पड़ता है और कर्म का रूप होता है सेवा। सेवा का जो रूप हमारे गुरुजी ने हमलोगों के सामने प्रस्तुत किया, उसी के बल पर आज हमलोग भारत में 80 हजार गरीब परिवारों की देखभाल कर पा रहे हैं। प्रतिवर्ष, प्रतिमाह हर परिवार के लिए अन्न, वस्त्र, कम्बल आदि घर की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं। बच्चों के लिए शिक्षा, नवयुवकों के लिए रोजगार और विकलांगों के लिए दुकानों की व्यवस्था की जाती है। बुर्जुगों के जीवन-यापन के लिये संसाधनों की व्यवस्था की जाती है। किसानों की उपज के लिये सहायता प्रदान की जाती है। परिवार में स्वास्थ्य के लिये चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है। जो कार्य आज स्वामी सत्यानंद जी की प्रेरणा से भक्तियोग की अभिव्यक्ति के रूप में हो रहा है, वह पूरे संसार में अद्वितीय है।

यह है भक्तियोग का व्यावहारिक रूप। साधनात्मक रूप तो आप जानते हो, लेकिन जो व्यावहारिक रूप है वह है सेवा का। तब जाकर भक्तियोग हृदय की भावनाओं को कोमल बनाता है, शुद्ध बनाता है। जब हमारे हृदय की भावनाएँ कोमल और शुद्ध हो जाती हैं, तब कर्मों में परिवर्तन आता है और उनमें समरसता आती है। वहाँ से कर्मयोग की शुरुआत होती है, जिसकी चर्चा हम कल करेंगे।

–6 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

देवता, दानव और मनुष्य

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारी गुरु परम्परा ऐसा मानती है कि हम सबके जीवन का एक ही लक्ष्य है—सुख, शांति और समृद्धि की प्राप्ति। सुख व्यक्तिगत जीवन में, शांति सामाजिक जीवन में एवं समृद्धि अपने पारिवारिक जीवन में, और इनकी प्राप्ति संभव है योग के द्वारा। इसलिए योग को हम अपनी आध्यात्मिक परम्परा का एक अनिवार्य अंग मानते हैं। एक धार्मिक मान्यता या विधि के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की एक व्यावहारिक शिक्षा के रूप में जिससे मनुष्य अपने भीतर आत्मभाव को जागृत कर सके और स्वार्थभाव को धीरे-धीरे कम कर सके। जब तक यह आत्मभाव हमलोगों के भीतर नहीं आयेगा, हमारे समाज और संसार में हमेशा अशांति और अराजकता रहेगी। कोई सिद्धांत, धर्म या राजनीति इसका निराकरण नहीं कर सकता, यह काम मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ही कर सकता है।

इस अशांति और अराजकता को दूर करने के लिये अपनी आंतरिक वृत्ति को बदलने की आवश्यकता है। जब तक हमारी आंतरिक वृत्ति नहीं बदलेगी, हम कुछ नहीं कर पायेंगे। उपनिषदों में एक कहानी आती है कि जब सृष्टि का निर्माण हुआ था, तब इसमें तीन प्रकार के प्राणी थे—देवता, मनुष्य और दानव। इन तीनों को मालूम नहीं था कि उनके जीवन का लक्ष्य क्या है। तब उन्होंने परमपिता ब्रह्मा के पास अपने प्रतिनिधि भेजे यह पूछने के लिए कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिये। जब ये तीन प्रतिनिधि ब्रह्मा जी से मिलने के लिये यात्रा कर रहे थे तो बीच में बादलों की जोरदार गर्जन हुई। उस गर्जन में इन तीन प्रतिनिधियों को अपने लिए संदेश सुनायी देता है। संदेश सुनकर ये अपने-अपने समाज में वापस आ जाते हैं।

जब देवताओं का प्रतिनिधि अपने समाज में पहुँचता है तो वहाँ पर उससे पूछा जाता है कि तुम्हें सृष्टिकर्ता से क्या आदेश मिला। वह कहता है, जब मैं जा रहा था तब बादलों की गर्जन में मुझे एक शब्द सुनायी पड़ा— *दमध्वम्, दमध्वम्, दमध्वम्।* इसका अर्थ होता है दमन करो, मन एव इन्द्रियों का दमन करो। देवताओं के बारे में तो आप जानते हैं न! स्वर्ग में रहते हैं, पाँच सितारा संस्कृति है वहाँ पर। जब तक जेब में पुण्यों का पैसा है, तब तक वहाँ रह सकते हैं और जिस दिन पुण्य समाप्त हो जाएँ, आपको स्वर्ग से बाहर निकाल दिया जाता है। स्वर्ग में भोग और विलास की प्रवृत्ति है। इसलिए उन भोगियों के लिए भगवान का आदेश था कि अपनी इन्द्रियों को, अपने मन को अपने वश में रखो।

इसी प्रकार जब मनुष्यों के प्रतिनिधि से पूछा गया कि तुम्हें कौन-सा आदेश मिला, तो उसने कहा कि बादलों की गर्जन में जो शब्द सुनायी पड़ा वह था—

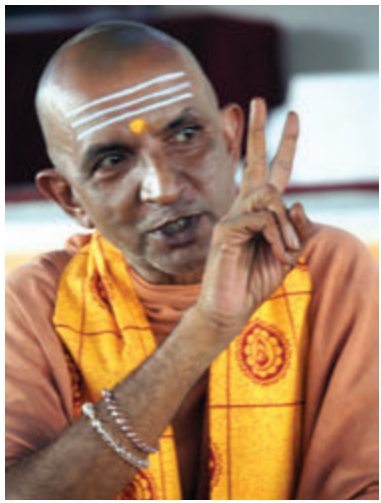

दनध्वम्, दनध्वम्, दनध्वम्। मतलब दो, दो और दो। मनुष्य की वृत्ति संग्रह की है। वह सब चीजों का संग्रह करना चाहता है, देना कुछ नहीं चाहता। आपके घर में सैकड़ों जूतों का संग्रह है, पर क्या आपने कभी अपना पुराना जूता अपने नौकर को दिया है? नहीं। आपकी अलमारी में सैकड़ों वस्त्र पड़े हैं, जिनमें से अनेक शायद ऐसे हैं जिन्हें आपने एक या दो बार ही पहना हो। क्या आपने अपना कोई वस्त्र किसी ऐसे व्यक्ति को दिया है जिसे उसकी आवश्यकता है? संग्रह करना सब जानते हैं, लेकिन देना कोई नहीं जानता है। इसलिए मनुष्य के लिये भगवान का यही आदेश था—दो, दो और दो, ताकि दूसरों के जीवन में जो अभाव और कमी है, उसे तुम पूरा कर सको।

हमारे गुरुजी कहते थे कि अगर तुम अपने दो बच्चों के लिए कपड़े खरीदने बाजार जाते हो तो दो की बजाय तीन जोड़े खरीदो। दो जोड़े तुम्हारे दो बच्चों के लिए और एक जोड़ा उस अज्ञात बालक के लिये जिसके पास कुछ नहीं है, जिसे देने से उसके जीवन का कल्याण हो जाए। अगर हर सक्षम व्यक्ति ऐसा कर सके तो इस देश में कभी गरीबी नहीं रहेगी, हर व्यक्ति के पास साधन और सुविधा उपलब्ध हो पायेगी। यह है दान की प्रक्रिया—संग्रहकारी वृत्ति की बजाय नि:स्वार्थ भाव से दूसरों का सहयोगी बनना। मनुष्यों के लिये भगवान का यही आदेश था।

अंत में जब दानवों के प्रतिनिधि से पूछा गया कि तुम्हें कौन-सा आदेश मिला है तो दानव कहता है कि बादलों की गर्जन में मुझे सुनाई पड़ा—*दयध्वम्, दयध्वम्, दयध्वम्।* मतलब दया करो, दया करो, दया करो। दानवों की मानसिकता क्रूर और हिंसक होती है। वे दूसरों के सुखों को छीनकर, दूसरों के जीवन में कष्ट लाकर प्रसन्न होते हैं। उनके लिये भगवान ने जो आदेश दिया वह था दया करो, ताकि तुम्हारे कर्मों से दूसरों के जीवन में दु:ख की बजाय प्रसन्नता और खुशी आये। इसे कहते हैं दया।

हमारे भीतर देवत्व भी है, हमारे भीतर मनुष्यत्व भी है और हमारे भीतर ही दानव भी बैठा है। अपने जीवन को पूर्ण और परिष्कृत बनाने के लिये ही शास्त्रों में ये तीन आदेश दिये गये हैं। जिस विधि से हम इन तीनों को व्यवस्थित करते हैं वह विधि योग कहलाती है और जो इन तीनों को व्यवस्थित कर पाता है, वही योगी कहलाता है।

—6 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

भक्ति का मार्ग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सा परानुक्तिरीश्वरे—ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम ही भक्ति है। श्रद्धा और विश्वास भक्ति की प्रारम्भिक अवस्थाएँ हैं, वही आगे चलकर भक्ति-मार्ग का मुख्य आधार बन जाती हैं। भक्ति की प्राप्ति हेतु शुद्ध प्रेमपूर्ण हृदय, विश्वास, निष्कपटता, सरलता, सत्यनिष्ठा, क्षमा, वैराग्य एवं ब्रह्मचर्य जैसे गुणों का होना भी आवश्यक है।

हम सभी जानते हैं कि श्रीराम ने भीलनी शबरी के जूठे बेर खाए थे। श्री कृष्ण के लिए सुदामा का तण्डुल तो संसार के सर्वश्रेष्ठ सम्राट् द्वारा प्रदत्त भोजन से भी श्रेष्ठतर था। प्रभु को तो केवल आपका प्रेमपूर्ण हृदय चाहिए। उन्हें न तो भव्य मन्दिर चाहिए और न ही कोई अन्य कीमती भेंट।

भक्ति क्रमबद्ध रूप से विकसित की जा सकती है। भक्तों एवं भागवतों के साथ सत्संग; श्री राम, सीता राम, हरि ॐ जैसे प्रभु के नामों का जप; प्रभु का सतत् स्मरण; प्रार्थना; रामायण एवं भागवत जैसे धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन; हरि कीर्तन; भक्तों की सेवा इत्यादि ऐसे साधन हैं जो आपके हृदय को भक्ति-भाव से आपूरित कर सकते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, घृणा, घमण्ड, पाखण्ड, सत्ता, प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि की कामना भक्ति योग के मार्ग की बाधाएँ हैं। शुद्ध विचारों द्वारा कामुकता का, क्षमा द्वारा क्रोध का, दान एवं ईमानदारी द्वारा लोभ का, विवेक द्वारा मोह का, नम्रता द्वारा घमण्ड का, उदारता एवं मुदिता द्वारा ईर्ष्या का, प्रेम द्वारा घृणा का तथा प्रभु के प्रति सरल, सहज एवं उन्मुक्त आत्मसमर्पण द्वारा अपने अहंकार का उन्मूलन कीजिये।

प्रह्लाद के समान विह्वल होकर प्रार्थना कीजिये। वाल्मीकि, तुकाराम या राम दास के समान प्रभु के नाम का जप कीजिये। राधा के समान प्रभु के नाम का गायन कीजिये। विरह-अग्नि से पीड़ित होकर मीरा के समान एकान्त में रोइये। भगवान गौरांग के समान कीर्तन एवं नृत्य करते हुए भाव समाधि में प्रवेश कीजिये।

मेरे प्यारे मित्रों! पत्नी, पुत्र, सम्बन्धियों, मित्रों, धन-सम्पत्ति तथा संसार की अन्य समस्त वस्तुओं के प्रति अपने प्रेम को एक जगह संघटित करके ईश्वर की ओर दिशान्तरित कीजिये। सदा आध्यात्मिक साधना एवं भजन करते रहिये। एक मिनट भी न खोइये। समय नष्ट करना सबसे बड़ा अपराध है। यदि आप प्रयास करेंगे तो भगवान अवश्य ही आपको सफलता प्रदान करेंगे, आप शीघ्र ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे।

प्रतिदिन प्रभु के नाम की दो सौ माला जप कीजिये। उनका गुणगान कीजिये। हरि कीर्तन कीजिये। उनके स्तोत्रों एवं स्तुतियों का पाठ कीजिये। अयोध्या, वृन्दावन, पण्ढरपुर या मथुरा में कुछ महीने निवास कीजिये। इन्द्रिय-संयम कीजिये। भोजन-वस्त्र सादा रखिये तथा सरल एवं प्राकृतिक जीवन बिताइये। आपके अन्दर शीघ्र ही भक्ति विकसित होगी। इन्द्रिय विषय-वस्तुओं के प्रति वैराग्य एवं दोष-दृष्टि विकसित कीजिये। वे अवास्तविक एवं नाशवान् हैं, दु:ख-तकलीफों के स्रोत हैं। ऐसा सोचने से वैराग्य स्वत: उत्पन्न होगा। वस्तुओं के प्रति राग भक्ति का शत्रु है।

यह सूत्र दोहराइये–'प्रभु! मैं तुम्हारा हूँ। सभी तुम्हारे हैं। तुम्हारी इच्छा फलीभूत हो।' स्वयं को समग्र रूप से समर्पित कीजिये। तभी आपको ईश्वर के दर्शन होंगे। स्वयं को इच्छारहित कीजिये। अहंकार को पूर्णत: नष्ट कीजिये। एक सच्चा भक्त प्रभु के समीप रहता, उनकी सेवा करता तथा उनके समस्त ऐश्वर्यों का उपभोग करता है।

ईश्वर कहाँ हैं?

क्या ईश्वर केवल मन्दिरों, गिरजाघरों एवं मस्जिदों में हैं? क्या वे केवल चार वेदों, छ: वेदांगों, षट् दर्शनों, अठारह पुराणों या चौंसठ तन्त्रों में हैं? क्या वे केवल तीर्थस्थानों में हैं? नहीं। तब वे हैं कहाँ? *हृदि सर्वस्य विष्ठितम्* –सब के हृदय में स्थित हैं। वे बहुत दूर नहीं, आपके अति निकट हैं। वे सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम, महत्तर से महानतम हैं और आपकी हृदय-गुहा में विराजमान हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन –न तर्क-वितर्क, न तीक्ष्ण बुद्धि और न ही शास्त्रों के विस्तृत अध्ययन द्वारा आप ईश्वर को जान सकते हैं। दृढ़ आध्यात्मिक साधना तथा गहन प्रेम द्वारा आप उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। व्यर्थ के वाद-विवाद से बचिये। सच्चे एवं सही प्रयास कीजिये।

प्रभु द्वारा भक्तों की रहस्यमय सहायता

बन्धुओं! अयोध्या निवासी रूपकला भगवान एवं पंजाब के एक सैनिक भक्त की कहानी सुनिये और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी प्रसुप्त श्रद्धा को जाग्रत कीजिये।

रूपकला भगवान अयोध्या का एक प्रसिद्ध राम-भक्त था। उसी ने अखिल-भारतीय-कीर्तन प्रारम्भ किया था। कुछ वर्ष पूर्व ही उसका देहान्त हुआ। वह सरकारी विद्यालयों का निरीक्षक था। एक दिन प्रभु श्रीराम के ध्यान में तन्मय हो जाने के कारण वह एक विद्यालय का निरीक्षण न कर सका। भगवान राम ने अपनी योग-माया-शक्ति से स्वयं उसका रूप धारण कर उस विद्यालय का निरीक्षण किया एवं रजिस्टर में उसका हस्ताक्षर करने के बाद अदृश्य हो गये। अगले दिन जब रूपकला स्कूल पहुँचा तो शिक्षकों ने हैरान होकर कहा कि आप कल ही तो यहाँ

आए थे! प्रमाणस्वरूप उन्होंने रजिस्टर में उसका हस्ताक्षर दिखाया। रूपकला को बहुत आश्चर्य हुआ। इस घटना से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया एवं अपना शेष जीवन अयोध्या में प्रभु राम के भजन-कीर्तन-स्मरण में बिताया।

अभी पंजाब की हाल की एक घटना के बारे में सुनाता हूँ। एक राम-भक्त सैनिक रात्रि के समय गश्त पर था। उसी समय एक कीर्तन मण्डली उसके समीप से गुजर रही थी। वह भक्ति-भाव से विभोर होकर कीर्तन मण्डली में शामिल हो गया। कीर्तन से उसे बहुत आनन्द मिला और वह आह्लादित होकर भाव-समाधि में खो गया। प्रात:काल छ: बजे वापस आने पर उसने सूबेदार-मेजर से पूछा कि उसकी अनुपस्थिति में कुछ हुआ तो नहीं। सूबेदार ने कहा, 'नहीं, कुछ नहीं हुआ। मैंने तो तुम्हें हमेशा गश्त पर घूमते देखा।' सूबेदार की बात सुनकर सैनिक ने इसे प्रभु श्रीराम की कृपा समझा। श्रीराम ने अपने भक्त के लिए स्वयं उसका रूप धारण कर गश्त लगाने का कार्य किया! मेरे प्रिय भाइयों! आप संशयी न हों। यदि आपकी भक्ति सच्ची है तो आपको भी ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन होंगे।

जप की महिमा

किसी मन्त्र या भगवान के नाम की आवृत्ति ही जप है। इस कलियुग में जप ईश्वर-प्राप्ति की सबसे आसान विधि है। तुकाराम, ध्रुव, वाल्मीकि, रामकृष्ण परमहंस, नरसी मेहता, गौरांग, रामदास, मीरा—इन सब ने ईश्वर के नामोच्चारण द्वारा ही मुक्ति प्राप्त की। प्यारे मित्रों! आप भी क्यों नहीं ऐसा कर सकते?

प्रत्येक मन्त्र शक्तिशाली होता है। यह दिव्य ऊर्जा का घनीभूत संग्रह है। जप तीन प्रकार के होते हैं—वैखरी या शाब्दिक उच्चारण द्वारा जप, उपांशु या बुदबुदाते हुए जप तथा मानसिक जप, जिसमें ओठ नहीं हिलते, मन के अन्दर ही जप चलते रहता है।

मन नवीनता चाहता है। वह एकरसता से ऊब जाता है। जैसे सब्जी के रूप में आप को आज बैंगन, कल लौकी और परसों परवल चाहिए, वैसे ही मन भी विविधता चाहता है, अन्यथा वह सुस्त हो जाता है। इसलिए कुछ समय के लिए बैखरी, कुछ समय के लिए उपांशु एवं कुछ समय के लिए मानसिक जप कीजिये। मन्त्र-आवृत्ति मन का द्वारपाल है। जब भी मन कहीं भागेगा तब मन्त्र-जप आपको तत्काल बतला देगा कि मन में कुछ बुरे विचार प्रवेश कर गये हैं।

प्रत्येक मन्त्र में चैतन्य शक्ति होती है जो मन को शान्त एवं सशक्त बनाती है। मन की बहिर्मुखता को अवरुद्ध करके मन्त्र इसे अन्तर्मुखी बनाता है। जप समस्त प्रकार के बुरे विचारों एवं प्रवृत्तियों का उन्मूलन करता है। इससे मन शुद्ध होता, वैराग्य उत्पन्न होता, वासना नष्ट होती तथा अन्तत: आपको प्रभु का साक्षात् दर्शन होता है।

जप सम्बन्धी निर्देश

शुद्ध, सात्त्विक भाव से मन्त्र का जप करें। जप नियमित रूप से होना चाहिए। यदि आप लगातार जप करने से थक जाते हैं तो तीन या अधिक बैठकें कीजिये। कुछ समय तक बहुत तेजी से मंत्र-जप कीजिये। यदि आपको लगे कि मन बहुत आवारागर्दी कर रहा है तब धीरे-धीरे जप कीजिये। सर्वोत्तम नियम यह है कि जप न तो बहुत तेजी से करें और न बहुत धीरे। सुविधाजनक मध्यम मार्ग अपनाइये।

प्रत्येक व्यक्ति का एक अलग ध्यान-कक्ष होना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो किसी कमरे के कोने में परदा लगाकर जप के लिए बैठिये। उस स्थान पर किसी भी व्यक्ति को न आने दीजिये। प्रात:काल एवं रात्रि में नियमित रूप से वहाँ जप के लिये दस मिनट बैठिये। धीरे-धीरे इस अवधि को जितना बढ़ा सकते हैं, बढ़ाइये।

इस कलियुग में लोगों का शरीर प्राय: दुर्बल है। अत: वे हठयोग के कठिन अभ्यासों को नहीं कर सकते। उनकी बौद्धिक क्षमता तथा चिन्तन-मनन की शक्ति भी कम है। ऐसी स्थिति में जप एवं कीर्तन ही आत्मसाक्षात्कार की सरल विधियाँ हैं। बंगाल के प्रसिद्ध भक्त राम प्रसाद ने केवल कीर्तन के बल पर माँ काली का दर्शन किया। *नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च, मद्भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद*–हे नारद! मैं न तो वैकुण्ठ में रहता हूँ और न ही योगियों के हृदय में, बल्कि मैं तो वहाँ रहता हूँ जहाँ मेरे भक्तगण मेरा गुणगान करते हैं।

भक्तियोग साधना

ईश्वर आपके आन्तरिक अधिष्ठाता, आपके विचारों के मौन द्रष्टा हैं। आप उनसे कुछ भी नहीं छिपा सकते। इसलिए निष्कपट एवं सरल बनिये। भगवान का भक्त सदैव नम्र एवं विनीत होता है। उसके ओठों पर सदैव प्रभु का नाम रहता है। जब वह एकान्त में होता है तो उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती है। वह बहुत सदाचारी एवं नेक होता है। वह सबके प्रति मैत्री भाव रखता है। उसका चरित्र बेदाग होता है। वह किसी की सम्पत्ति के लिए लालच नहीं करता। वह समस्त प्राणियों में हरि को देखता है।

भक्ति पर्वतों को हिला सकती है। इसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। मीरा की भक्ति ने सर्प को फूलों की माला में, विष को अमृत में और काँटों की सेज को गुलाब की शय्या में बदल दिया। प्रह्लाद की भक्ति से तो आग शीतल बर्फ में रूपान्तरित हो गई।

सच्चे भक्त को पवित्रता और अच्छाई का मूर्तरूप होना चाहिए। उसे सभी जीवों के कल्याणार्थ तत्पर रहना चाहिए। सब की भलाई में लगा रहनेवाला भक्त शाश्वत शान्ति प्राप्त करता है। दूसरों की खुशी में आनन्द का अनुभव करनेवाला भक्त शीघ्र ही भगवान का दर्शन प्राप्त करता है। अन्ततः वह अद्वैत चेतना से युक्त हो जाता है।

भक्तों की क्या पहचान है? श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है– 'उनका हृदय सदैव मुझमें लीन रहता है। उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं रहती। वे अत्यन्त विनीत होते हैं। वे समदर्शी होते हैं। उनकी किसी व्यक्ति या वस्तु में आसक्ति नहीं होती। उनमें ममता का पूर्ण अभाव होता है। उनमें बिल्कुल अहंकार नहीं होता। उन्हें दुःख और सुख समान प्रतीत होते हैं। वे किसी से कुछ नहीं लेते। उनका कोई शत्रु नहीं होता, वे सभी से प्रेम करते हैं। वे सदा शान्त और सौम्य रहते हैं। उनका चरित्र सचमुच आदर्श होता है।'

आध्यात्मिक मार्ग में शीघ्र एवं ठोस प्रगति दिलाने वाली एक साधना बतलाता हूँ। यह उन्नत साधकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। प्रातः चार बजे उठकर किसी ऐसे आसन में बैठ जाइये जिसे आपने सिद्ध कर लिया है। आसन जमाकर जप प्रारम्भ कीजिये। चौदह घण्टों तक कुछ भी भोजन या जल मत ग्रहण कीजिये। प्रयास कीजिये कि आप अपने आसन से बिल्कुल न उठें, हो सके तो सूर्यास्त तक लघुशंका-निवृत्ति भी न करें। सूर्यास्त के समय यह जप-अनुष्ठान समाप्त कर दूध और फलाहार ग्रहण करें। इसका अभ्यास पन्द्रह दिन में या महीने में एक बार करें। गृहस्थ इस अनुष्ठान का अभ्यास छुट्टियों के दौरान कर सकते हैं।

एक और साधना बतलाता हूँ जिसे दस दिन में किया जाता है। इसे नवरात्रि या क्रिसमस या गर्मी की छुट्टियों में किया जा सकता है। किसी हवादार कमरे में अपने आप को बन्द कर लीजिये। न तो किसी से मिलिये, न ही दूसरों की बातचीत सुनिये। प्रातः चार बजे उठकर अपने गुरु या इष्ट मन्त्र का जप प्रारम्भ कीजिये और सूर्यास्त के समय समाप्त कीजिये। तब फलाहार और दूध या खीर लीजिये। एक-दो घण्टे के लिए आराम कीजिये फिर पुनः अपना जप आरम्भ कीजिये। रात को ग्यारह बजे शयन कीजिये। आप जप के साथ ध्यान भी सम्मिलित कर सकते हैं। स्नान, भोजन आदि सभी व्यवस्था कमरे में ही कर लीजिये। सम्भव हो तो दो कमरों की व्यवस्था कीजिये, एक स्नान-शौच आदि के लिए और एक ध्यान के लिए। जप के अभ्यास को दिन में चार बार दोहराइये। आपको इस अनुष्ठान से अद्भुत अनुभव और परिणाम मिलेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

एक अन्य चालीस दिन का अनुष्ठान इस प्रकार है। आपको चालीस दिनों में राम मन्त्र का एक लाख पचीस हजार बार लिखित जप करना होगा। प्रतिदिन 3000 बार और अन्तिम पाँच दिन, 4000 बार। प्रात: चार बजे उठकर किसी पतले कागज पर 3000 राम नाम लिखिये। फिर कागज को इस प्रकार काटिये कि प्रत्येक टुकड़े पर एक-एक राम नाम हो। प्रत्येक टुकड़े को आटे में मिलाकर एक छोटी गोली बना लीजिये। जहाँ तक सम्भव हो सके यह प्रक्रिया एक आसन में बैठकर पूरी कीजिये। कुछ लोग लिखने के लिए केसर, कपूर, कस्तूरी आदि से निर्मित विशेष स्याही और तुलसी की पतली, नुकीली लकड़ी का प्रयोग करते हैं। यदि आप इनकी व्यवस्था न कर पाएँ तो साधारण कलम और स्याही का इस्तेमाल करें। यह अनुष्ठान गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी या नर्मदा जैसी नदियों के तट पर रहकर करना श्रेयस्कर है। आटे की गोलियाँ बनाकर उन्हें नदी में मछलियों के लिए फेंक दीजिये। अनुष्ठान के दौरान दूध और फलाहार का ही सेवन कीजिये। आपमें अद्भुत तितिक्षा और धैर्य का विकास होगा। आप पर दिव्य अनुग्रह का अवतरण होगा।

सम्पूर्ण रामायण का 108 बार पूरी तन्मयता और एकाग्रता के साथ अध्ययन कीजिये। यदि आप प्रतिदिन तीन घण्टे दे सकें तो यह अनुष्ठान तीन वर्षों में समाप्त किया जा सकता है। आप दिव्य ऐश्वर्य एवं सिद्धि के साथ-साथ स्वयं प्रभु श्रीराम के दर्शन प्राप्त करेंगे।

भक्तियोग और ज्ञानयोग परस्पर विरोधी नहीं हैं। ज्ञान भक्तियोग का मधुर फल है। परा-भक्ति और ज्ञान एक हैं। शुद्ध ज्ञान ही प्रेम है। श्री शंकराचार्य, जो एक महान् अद्वैत ज्ञानी थे, हरि, हर और देवी के महान् भक्त भी थे। आलन्दी के महान् योगी ज्ञानदेव भगवान कृष्ण के भक्त थे। श्री रामकृष्ण परमहंस, जिन्हें अपने अद्वैत गुरु, स्वामी तोतापुरी से ज्ञान प्राप्त हुआ, माँ काली के उपासक थे। चैतन्य महाप्रभु अद्वैत वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे, फिर भी वे गली-बाजार में नाचते हुए हरि-संकीर्तन करते थे। दक्षिण भारत के विख्यात ज्ञानी, अप्पय्य दीक्षितार, जिन्होंने सिद्धान्त-लेश जैसी उत्कृष्ट वेदान्त-कृतियों की रचना की, भगवान शिव के भक्त थे। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति को ज्ञान के साथ सफलतापूर्वक संयोजित किया जा सकता है।

घरों में कथा-कीर्तन

रात्रि में घर के सभी सदस्य भगवान के चित्र या विग्रह के चारों ओर बैठकर एक घण्टे तक कीर्तन करें। इसमें घर के नौकर-चाकरों को भी सम्मिलित करना चाहिए। ईश्वरीय चेतना प्राप्त करने का यह एक सरल तरीका है। सुर और ताल मिलाकर भगवान के किसी भी नाम का कीर्तन कीजिये। नाद ब्रह्म की उत्पत्ति होगी और आप

संसार की सुध-बुध खोकर भाव समाधि में प्रविष्ट होंगे। केवल बड़ी-बड़ी बातों से काम नहीं चलेगा। आज से ही इसका अभ्यास करिये और स्वयं अनुभव कीजिये।

जिस प्रकार अफीम की गोली लेने से कई घण्टों तक नशे का प्रभाव बना रहता है, उसी प्रकार कीर्तन से प्राप्त दिव्य उन्माद अगले दिन तक बना रहेगा। रात्रि में आपको बुरे स्वप्न नहीं सतायेंगे। कीर्तन के दौरान आपके हृदय में स्थित परमात्मा से एक विशेष आध्यात्मिक तरंग प्रवाहित होती है जो आपके प्राणमय एवं मनोमय कोषों को परिशुद्ध करती है। सभी व्याधियाँ विलीन हो जाती हैं। आपको जीवन-संग्राम में संघर्षरत रहने की शक्ति और प्रेरणा मिलती है। भगवान का नाम-संकीर्तन सचमुच एक रामबाण औषधि है।

रात्रि के अलावा सायंकाल में भी घर के चार-पाँच लोग मिलकर भगवद्गीता, रामायण या भागवत का नियमित अध्ययन कर सकते हैं। शास्त्रों तथा आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय क्रियायोग है। यह उन गृहस्थों के लिए बहुत लाभदायक है जो ध्यान जैसे उच्च आध्यात्मिक अभ्यासों के लिए समय नहीं निकाल पाते। स्वाध्याय स्वयं एक प्रकार का ध्यान है। जब मन दिव्य विचारों से आपूरित होता है, तब वह निर्मल एवं सात्त्विक हो जाता है। वह सूक्ष्म तथ्यों को ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है।

महिलाओं के लिए

अंत में मैं भारतीय नारियों के धार्मिक स्वभाव के बारे में दो शब्द कहना चाहूँगा। भारत में महिलाओं द्वारा ही धर्म का पोषण तथा संवर्द्धन होता है। भारतीय महिलाओं में एक विशेष प्रकार की धार्मिक प्रवृत्ति अंतर्निहित है जो उन्हें स्वाभाविक रूप से श्रद्धायुक्त और भक्तिमय बनाती है। अपने दैनिक आचरण और जीवनशैली से वे सहज ही पुरुषों में धार्मिक भावना का संचार करती हैं। वे सबेरे जल्दी उठकर घर-आंगन की सफाई करती हैं, स्नानादि से निवृत्त होकर जप करती हैं और घर के छोटे-से मन्दिर में पूजा-अर्चना करती हैं। इस छोटी-सी ठाकुरबाड़ी में वे भगवान की मूर्तियाँ, चित्र, पूजा की सामग्री इत्यादि बड़ी सावधानी और सुन्दरता से रखती हैं। वे इस स्थान को अत्यन्त पवित्र रखती हैं और सन्ध्या में वहाँ आरती और प्रार्थना करती हैं। उनके प्रभाव से घर के अविश्वासी और नास्तिक पुरुषों को भी एक-आध प्रार्थना करनी ही पड़ती है। वास्तव में महिलाएँ ही घर पर शासन करती हैं। वे शक्ति का मूर्तिमान स्वरूप हैं। पत्नी की अनुपस्थिति में पति को कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार नहीं है। मनु-स्मृति में कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:॥

'जहाँ नारियों का पूजन-सम्मान होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं। लेकिन जहाँ उनका अनादर होता है, वहाँ कोई भी धार्मिक कृत्य फलदायी नहीं होता।' भारतीय नारियों की ऐसी महिमा है! मेरी उनसे यही प्रार्थना है कि वे प्रात: उठते ही भगवान के नाम का संकीर्तन करें और अपनी संतानों को भी संकीर्तन की प्रेरणा और प्रशिक्षण दें। सारा घर-परिवार दिव्य आध्यात्मिक तरंगों से स्पन्दित हो जाएगा। पानी भरते, कपड़े धोते या भोजन पकाते वक्त भी उन्हें मन्द स्वर में प्रभु के नामों का गायन जारी रखना चाहिए। दो महीनों तक ऐसा करने से भगवान का नाम लेने की गहरी आदत स्थापित हो जाएगी। ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए यही अपने में पर्याप्त है। इस कलियुग में यही सबसे सरल और सशक्त उपाय है। प्रभु का नाम लेने की यह आदत जीवन के अंतिम क्षण में भी काम आएगी।

भगवान करे कि हम अपनी आँखों और कानों से जो कुछ भी ग्रहण करें वह शुभ तथा मंगलकारी हो, ताकि हमारी इन्द्रियाँ स्थिर एवं अनुद्विग्न रहें और हम दत्तचित्त होकर भगवान का स्मरण, संकीर्तन तथा ध्यान करते हुए दिव्य जीवन प्राप्त करें।

व्यावहारिक योग साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्रतिदिन के 24 घण्टों में से 23 घण्टे बेशक हमलोग संसार के काम से जुड़ें, लेकिन एक घण्टा भगवान और गुरु के साथ भी जुड़ें। जो आदमी फिर भी कहता है कि मेरे पास समय नहीं है, वह अपने जीवन में उत्थान की कामना फिर कभी न करे। अगर तुम अपने जीवन में सुख और शांति चाहते हो तो दिन के 23 घण्टे संसार, समाज, परिवार और व्यवसाय को देना, लेकिन एक घण्टा अपने गुरु और ईश्वर को प्रतिदिन समर्पित करना। चौबीस घण्टों में एक घण्टा कोई बड़ी बात नहीं है। अगर दस घण्टे सोते हो तो नौ घण्टे सोना, कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। घण्टे भर का जो समय तुम गुरु तथा ईश्वर के लिये देते हो उस समय योगाभ्यास तथा मंत्र का जप होना चाहिये। यह हर व्यक्ति के जीवन की साधना होनी चाहिए।

योगाभ्यास तथा मंत्र का जप अपनी दिनचर्या के अनुसार व्यवस्थित करते हुए करना है। यह कोई आवश्यक नहीं कि एक बार बैठकर डेढ़ घण्टे तक योगाभ्यास करें, बल्कि छोटे-छोटे रूप में इस योग का अभ्यास कीजिये। सबेरे उठने पर महामृत्यंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गाजी के बत्तीस नाम–इन तीन मंत्रों का जप, स्नान करने के बाद और नाश्ते के पूर्व चार-पाँच आसनों का अभ्यास, एक-दो

प्राणायामों का अभ्यास। उसके बाद नाश्ता कर लो, पढ़ाई के लिए जाओ, नौकरी में जाओ। जब घर वापस आते हो तब सीधे अपने कमरे में चले जाओ। चाय वगैरह पीने के पहले बिस्तर पर लेटकर पन्द्रह-बीस मिनट के लिये योगनिद्रा का अभ्यास करके अपने आपको तनावमुक्त करो। उसके बाद फिर दोस्तों से मिलो, भोजन करो, घूमो-फिरो, लेकिन रात को सोने से पहले गुरु मंत्र का जप करो। जब रात को गुरु मंत्र का जप करके सोओगे तो तुम्हारा मन तनावमुक्त और शांत होगा। सबेरे जब उठोगे तो स्फूर्ति और शक्ति से युक्त होकर, एक नये संकल्प और प्रेरणा से युक्त होकर संसार के कार्यों में फिर संलग्न हो सकते हो।

इस प्रकार दिन में अलग-अलग समय पर योग को शामिल करके इसके सभी फायदों को प्राप्त किया जा सकता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि मंत्र जप सबेरे ही हो। अगर रात को मंत्र जप करके सोयेंगे तो आपके अवचेतन तनाव आपको प्रभावित नहीं करेंगे। निद्रा अच्छी आयेगी और शरीर में शांति और शक्ति का संचार होगा ताकि दूसरे दिन आप पुन: पूर्ण कर्मठता के साथ अपने जीवन के कर्तव्यों को निभा सकें।

–7 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

कर्मयोग का मर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पिछले तीन दिनों में हमने आपको हठयोग, राजयोग और भक्तियोग के बारे में बतलाया है। हठयोग शरीर के लिए है, राजयोग मन के लिए और भक्तियोग भावना के लिए। आज अगले चरण की बात करनी है और यह है मनुष्य का कर्म और व्यवहार। कर्म और व्यवहार द्वारा ही हमारे जीवन में अशांति एवं अराजकता आती है, और इसी के द्वारा हम अपने दु:खों से मुक्त हो पाते हैं। एक तरफ जहाँ कर्म और व्यवहार बंधन के कारण बनते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे मनुष्य की मुक्ति के कारण भी बनते हैं। इसलिये कर्म को समझना योग में बहुत जरूरी है।

जन्म से मृत्यु तक हम कर्म करते हैं, लेकिन वे कर्म हमें संसार, माया, स्वार्थ, मोह और आसक्ति से जोड़ते हैं। वे हमारे उत्थान का कारण न बनकर हमें बंधन में डालते हैं, एक सीमा में बाँध देते हैं। जो कर्म और व्यवहार हमें सीमित कर देता है वह जीवन में दु:ख का कारण बनता है। गीता में श्रीकृष्ण कर्म के बारे में कहते हैं– *योगिन: कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये,* अर्थात् योगीजन अपने आपको आसक्ति से मुक्त करके आत्मशुद्धि को प्राप्त करने के लिये कर्म करते हैं। यह हमारे जीवन के लिये एक दिशानिर्देश है, जिसके द्वारा हमारी दृष्टि, सोच और बुद्धि का रूपान्तरण होना चाहिए। जब तक सोच और बुद्धि में परिवर्तन नहीं होता, कर्म आत्मशुद्धि का माध्यम नहीं बनता।

स्वान सिद्धांत

अब प्रश्न उठता है कि कर्मों को कैसे किया जाए, उनका निष्पादन किस तरीके से हो। यदि हम मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो मानव मन के भीतर चार प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। एक अवस्था महत्त्वाकांक्षाओं और इच्छाओं से युक्त है, और ये महत्त्वाकांक्षाएँ हमारे कर्मों को निर्देशित करती हैं। हमारे कर्म इन महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये किये जाते हैं। मन की एक दूसरी अवस्था है जहाँ पर हम अपनी आवश्यकताओं के बारे में सजग हो जाते हैं। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक दृष्टि से हमारी आवश्यकताएँ क्या हैं? शरीर की आवश्यकता है स्वस्थ रहना, मन की आवश्यकता है प्रतिभासम्पन्न और शांत रहना, भावनाओं की आवश्यकता है संतुलित रहकर सकारात्मक गुणों को अभिव्यक्त करना। लेकिन जो महत्त्वाकांक्षा होती है, वह आवश्यकता के विपरीत होती है। महत्त्वाकांक्षा कहती है कि हम डॉक्टर बन जाएँ, बड़े आदमी बनें, लेकिन क्या वह क्षमता हममें है? नहीं है। इसलिए हमें प्राथमिकता देनी है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये और जब

रस्वती परमाचार्य विश्व योगपीठ, मुंगेर,

'आफैलाई चिनौ' योगोत्सव Know You
पूज्य गुरुदेव अनन्तविभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के श्री
श्री स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती परमाचार्य विश्व
बिहार (भारत

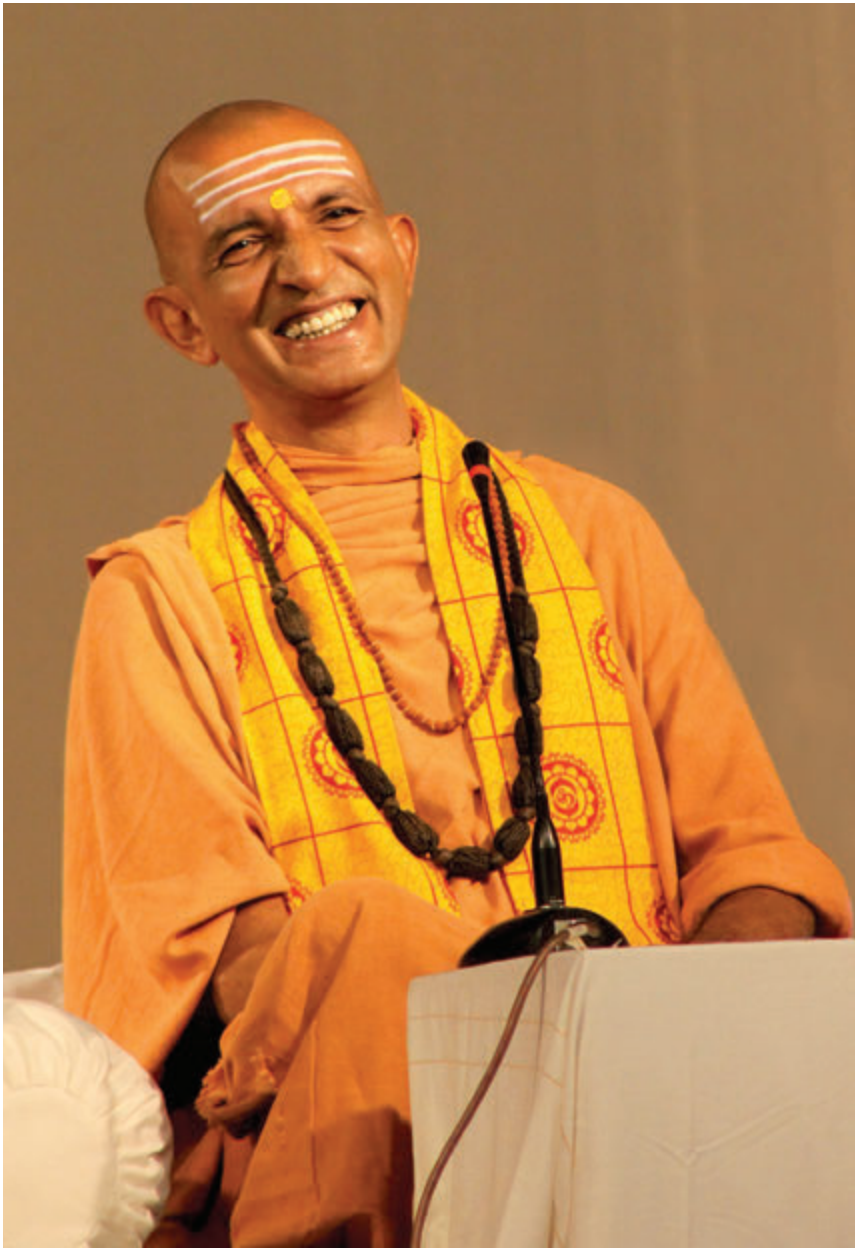

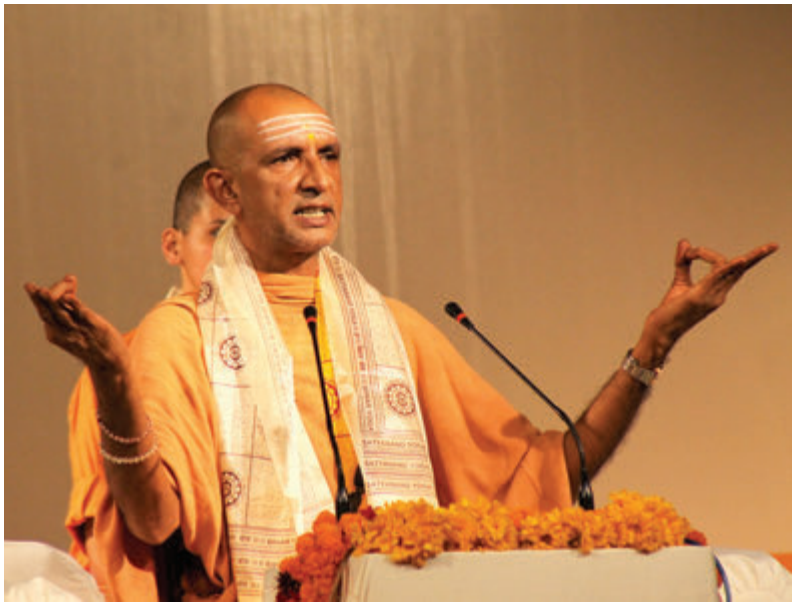

हमारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं, तब फिर हम अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की ओर देखें। उसके पहले नहीं। गलती क्या होती है कि हम अपनी आवश्यकताओं को नहीं देखते, बल्कि अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को प्राथमिकता देते हैं। यहीं पर हमारा प्रयास और पुरुषार्थ विफल होता है। इसलिये दृष्टि और चिंतन को बदलना आवश्यक है।

आज जब आप घर वापस जाते हो तो एक काम करना। दो कागज लेकर बैठ जाना, पहले कागज पर अपने जीवन की जितनी भी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, सबको नोट कर लेना, और दूसरे कागज पर अपने जीवन की जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें नोट करना। फिर दोनों को मिलाकर देखना और यह निर्णय लेना कि मुझे पहले क्या करना है। विवेक का सहारा लेकर अपनी आवश्यकताओं की ओर पहले ध्यान दो और महत्त्वाकांक्षाओं की ओर बाद में।

इस बिन्दु पर मैं एक और विचार प्रस्तुत करना चाहूँगा। जब हमलोग देख लेते हैं कि हमारी क्या महत्त्वाकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ हैं, तब यह देखा जाए कि हममें कितना सामर्थ्य है। सामर्थ्य का मतलब शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक शक्ति। यह भी देख लिया जाए कि कहाँ पर हम फेल करते हैं, हमारी कमजोरी क्या है। उदाहरण के तौर पर जब कोई व्यक्ति किसी इंटरव्यू के लिये जाता है तो घबरा जाता है और उसकी मानसिक स्पष्टता गायब हो जाती है। जब उससे प्रश्न पूछा जाता है तो इतना पानी-पानी हो जाता है कि बहुत बार ठीक तरीके से उत्तर नहीं दे पाता, नर्वस हो जाता है। यह नर्वसनेस मन और मस्तिष्क

की एक कमजोरी है। किसी आदमी के सामने जब हम बहुत छोटा महसूस करते हैं और निराश हो जाते हैं तब उस समय जो हीनता की भावना हम अनुभव कर रहे हैं, वह हमारे जीवन की एक कमजोरी है और वह हमारे मन द्वारा ही निर्मित है। इस प्रकार आप अपने जीवन की सभी कमजोरियों को देख लो और उनकी एक सूची बना दो और साथ ही अपने जीवन के सामर्थ्यों को भी जान लो और उनकी भी एक सूची बना लो।

इसको अंग्रेजी में कहते हैं SWAN सिद्धांत। S का मतलब होता है स्ट्रेंग्थ, W का मतलब वीकनेस, A का मतलब एम्बीशन और N का मतलब होता है नीड। सामर्थ्य, कमजोरियाँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ, इन चार चीजों के साथ आपको अपना जीवन जीना है। भूल जाओ ध्यान को, मैं यहाँ व्यावहारिकता की बात कर रहा हूँ। जो जीवन आप प्रतिदिन अपने समाज, घर या व्यवसाय में जीते हो, वह इन चार अवस्थाओं से प्रेरित रहता है। हमारे कर्म और व्यवहार इन्हीं के द्वारा संचालित होते हैं। इसलिये जब श्रीकृष्ण कहते हैं– *योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये*– आसक्ति का त्याग करते हुए आत्मशुद्धि की प्राप्ति के लिये कर्म करो, तब उस समय आसक्ति के त्याग के लिये आपको अपनी महत्त्वाकांक्षा, आवश्यकता, सामर्थ्य और कमजोरी के प्रति सजग रहना आवश्यक होता है। जब तक आप इनके बारे में सजग नहीं रहेंगे आप अपने आपको आसक्ति से मुक्त नहीं कर पाएँगे, आत्मशुद्धि की ओर नहीं जा पाएँगे।

प्रतिपक्ष भावना

कर्मों के प्रभावों से अपने आपको अछूता रखना ही कर्मयोग का मुख्य सिद्धांत है। एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। एक बार कुछ वर्ष पूर्व एक व्यक्ति हमारे पास आए और कहने लगे, 'स्वामीजी, मुझे उच्च रक्तचाप की शिकायत है, क्या योग के माध्यम से इसका उपचार हो सकता है?' हमने कहा, 'निश्चित रूप से हो सकता है, लेकिन हमें बतलाइये कि आपका यह उच्च रक्तचाप कब शुरू हुआ?' हम यह जानना चाह रहे थे कि उनकी यह बीमारी कितनी पुरानी है और उसका कारण क्या है। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी, मुझे मालूम है कि किस दिन यह समस्या शुरू हुई। एक महीने पहले से।' हमने पूछा, 'एक महीने पहले कौन-सी घटना घटी थी जिसके कारण आपको उच्च रक्तचाप हुआ?' जवाब आया, 'स्वामीजी, मैं कॉलेज में प्रोफसर था, रिटायर होने के बाद आराम से बेटे और बहू के साथ घर में रहने लगा। एक दिन बेटे और बहू के बीच लड़ाई हो गई तो बहू का मूड खराब हो गया। उसी गुस्से में वह घर का काम-काज करने लगी। मैं सोफे पर बैठकर टी.वी. देख रहा था और नाश्ता कर रहा था। वहाँ सफाई करते हुए बहू ने जब मेरी ओर देखा तो बड़बड़ाकर बोली, देखो न! मेरे ससुर जी कुत्ते की तरह सोफे पर बैठे हैं। मैंने

वह सुन लिया। मुझे बहुत चोट लगी और मैं व्यथित हो गया। उसी दिन से मेरा उच्च रक्तचाप शुरू हुआ है।'

हमने उनसे मजाक में पूछा, 'अच्छा जब बहू ने कहा कि आप कुत्ते जैसे हैं तब आपने किस कुत्ते का चित्र अपने मन में देखा?' उन्होंने कहा, 'सड़कछाप कुत्ते का।' हमने कहा, 'यही आपके उच्च रक्तचाप का कारण है क्योंकि आप खुद को सड़कछाप कुत्ते के रूप में देख रहे हो। आप एक काम करो, अपने को एक स्वस्थ, सुन्दर एल्सेशियन कुत्ते के रूप में देखो जो एक एयर-कंडीशंड बंगले में रहता है, एयर-कंडीशंड गाड़ी में घूमता है, जिसे भोजन के लिये किसी के पास जाकर दुम हिलाने की आवश्यकता नहीं। समय पर खाना मिल जाता है, समय पर हर प्रकार की सुविधा मिल जाती है। बहुत सुखी कुत्ता है।'

उन्होंने मुझे अजीब दृष्टि से देखा। शायद सोच रहे होंगे कि मैं तो यहाँ पर योग की जानकारी लेने आया और स्वामीजी कहते हैं कि अपने आपको सड़कछाप कुत्ते की बजाय बढ़िया कुत्ते के रूप में देखो। इसी उधेड़-बुन में वे चलते बने। तीन-चार महीने बाद वे व्यक्ति फिर आते हैं और कहते हैं कि स्वामीजी, मैंने आपके सुझाव का पालन किया और मेरा उच्च रक्तचाप ठीक हो गया! हम इस घटना को भूल गये थे। हमने पूछा, 'कौन-सा सुझाव? 'अपने को एक अच्छे कुत्ते के रूप में देखना। अब मैं एल्सेशियन हूँ, प्रसन्न हूँ, खुश हूँ, मस्त हूँ। अब मुझे ब्लड-प्रेशर की समस्या नहीं है।'

यह सत्य घटना है। उनके मन ने एक नकारात्मक विचार को ग्रहण किया जिससे उन्हें दु:ख पहँचा और फिर उसी विचार को उन्होंने बदला। उन्हें योगनिद्रा, ध्यान, आसन या प्राणायाम जैसे योगाभ्यासों को करने की आवश्यकता नहीं पड़ी, बस विचारों को बदल दिया। जिस रूप में वे अपने आपको देखते थे, उसे बदल दिया। खुश हो गए तो उनके रक्तचाप की समस्या खत्म। और ऐसी बात नहीं कि आज भी वे अपने आपको एक एल्सेशियन कुत्ते के रूप में देखते हैं। वह तो केवल उनके मन की एक स्थिति थी जिसे बदलने की आवश्यकता थी।

हमारे गुरुजी कहते थे, 'हमारे आश्रम में बहुत लोग आते हैं रोगोपचार के उद्देश्य से। वे सोचते हैं कि स्वामीजी के अस्पताल में भर्ती होकर हम अपने रोग

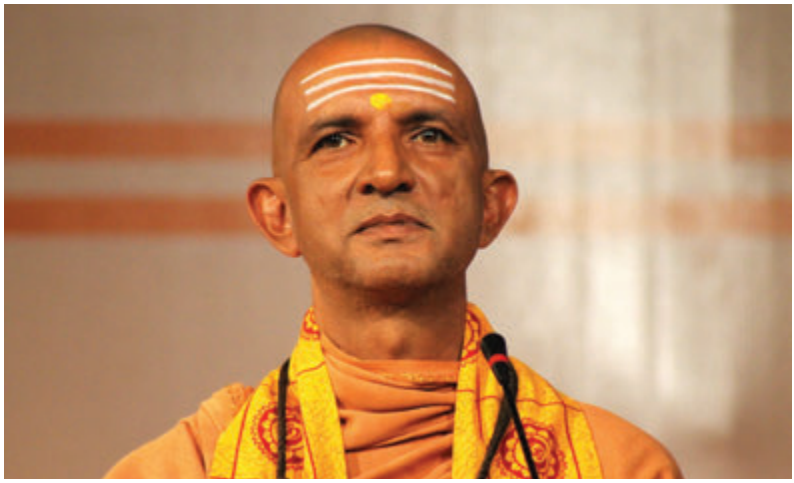

का उपचार करेंगे। लेकिन हमारा पहला नियम है कि जब तुम आश्रम आते हो तो अपने रोग को भूल जाओ और यह विचार करो कि मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ। अगर तुम हमेशा सोचते रहोगे कि मैं रोगी हूँ तो फिर मन की वह नकारात्मक शक्ति तुम्हें और कमजोर बनाते रहेगी। लेकिन अगर तुम सोचोगे कि मैं स्वस्थ हूँ तो तुम्हारे भीतर वह संकल्प शक्ति जागृत होगी जो उस रोग को दूर कर सकती है।'

विचारों को बदलने की इस प्रक्रिया को योग की भाषा में कहते हैं प्रतिपक्ष भावना। जो भी नकारात्मक विचार आते हैं उन्हें अच्छे, सकारात्मक विचारों में बदल दो। 'अरे, वह व्यक्ति बुरा है', अगर ऐसा विचार आए तो उसको सकारात्मक विचार में बदलो कि वह व्यक्ति बुरा नहीं है, केवल अपने कर्मों को अभिव्यक्त कर रहा है। मैं उसे बदलने के लिये उसकी सहायता करूँगा। जब आप अपने मन में इस प्रकार के विचार को ला देते हो, तो दूसरे व्यक्ति के प्रति जो द्वेष और घृणा थी वह समाप्त हो जाती है। उस व्यक्ति के प्रति करुणा फिर उस व्यक्ति के दोषों को नहीं देखने देगी, बल्कि उस व्यक्ति के जीवन में अच्छाई को देखने के लिये प्रेरित करेगी। भले ही वह व्यक्ति देखे या न देखे, लेकिन कम-से-कम आप तो दूसरे के जीवन में अच्छाई को देखो। हमारे गुरुजी कहते थे कि मेरे पास आने वाला व्यक्ति चाहे हजारों दुर्गुणों से युक्त क्यों न हो, मैं उसके भीतर एक गुण की खोज करता हूँ और उस गुण को प्रकट करने का प्रयास करता हूँ। जब वह गुण प्रकट होता है तब हजार दोष अपने आप ही समाप्त हो जाते हैं।

प्रतिपक्ष भावना का प्रयोजन यही है कि अपने तामसिक एवं नकारात्मक चिंतन, व्यवहार और कर्म को सकारात्मक बनाने का प्रयास हमेशा करते रहना चाहिये। जब तक हम सकारात्मकता से जुड़े रहते हैं, तब तक हम कर्मों के विषम परिणामों

से मुक्त रहते हैं, नहीं तो एक छोटी-सी बात भी हमारे जीवन में उच्च रक्तचाप को ला देती है।

ज्ञान का स्त्रोत हमारे भीतर है

इसलिये हमने कहा कि कर्मयोग का मतलब होता है कर्मों के प्रभावों से अपने मन को मुक्त रखना, अप्रभावित रखना। यदि इसका आचरण हमलोग अपने जीवन में कर पाएँ तो निश्चित रूप से हमलोगों का जीवन सिद्ध होगा, सफल होगा। हमारे गुरुजी की यही शिक्षा थी। जब हम आश्रम में आए तब उस समय हमारी उम्र मात्र चार वर्ष की थी। तब से हम अपने गुरुजी के साथ आश्रम में रहने लगे और ग्यारह वर्ष की उम्र में उन्होंने हमें औपचारिक रूप से संन्यास दिया। उन्होंने कहा, तुम तो जन्म से ही साधु हो, संन्यासी हो, लेकिन संसार के लिये औपचारिकता तो निभानी है, और ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने हमें विधिवत् संन्यास दीक्षा दी। दीक्षा देने के एक सप्ताह बाद हमसे कहा कि अब तुम जाओ और संसार में योग का प्रचार करो।

हम अकेले ही पाश्चात्य जगत् में गए और बारह साल पूरे विश्व का भ्रमण किया। पूरे विश्व में योग की शिक्षाओं का प्रचार करते हुए, योग केन्द्रों की स्थापना करते हुए जो अनुभव हमें प्राप्त हुआ, वह ज्ञान से नहीं, बल्कि कर्म के माध्यम से प्राप्त हुआ। तब हमने समझा कि हमारे गुरु, हमारे मनीषी जो कहते थे वह वास्तव में सत्य है। ज्ञान बाहर से प्राप्त नहीं होता, उसकी उत्पत्ति मनुष्य के भीतर से होती है। बाइबिल में भी कहा गया कि इस संसार में कोई भी चीज नई नहीं है, जो कुछ भी है वह तुम्हारे भीतर से उत्पन्न होता है।

मनुष्य की चेतना, उसका सामर्थ्य, उसकी शक्ति असीम है। विज्ञान कहता है कि आज मनुष्य मस्तिष्क का केवल दसवाँ हिस्सा जागृत है। मस्तिष्क के बाकी नब्बे प्रतिशत केन्द्र प्रसुप्त हैं। पर जो योगी होते हैं, उनके मस्तिष्क का केवल 10 प्रतिशत काम नहीं करता, बल्कि कहा जाए कि 100 प्रतिशत काम करता है। आखिर वे ही तो हमारे जीवन में विद्याओं के दाता हैं। ऐसी विद्याएँ जो हमारे कल्याण, हमारे उत्थान में सहायक होती हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने जो शोध और चिंतन किया है, आज उसी के बल पर हमारी संस्कृति और संस्कार जीवित हैं। उन्होंने तो तो किसी विश्वविद्यालय में जाकर ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया, बल्कि आज जिन ग्रंथों और शास्त्रों का हम अध्ययन करते हैं, वे उनकी चेतना की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऐसी अभिव्यक्तियाँ जिन्हें आज तक कोई काट नहीं पाया है।

चेतना और ऊर्जा का संयोग

हमलोगों का व्यक्तित्व सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वगुणसम्पन्न है, आवश्यकता केवल यह है कि हम अपने भीतर के द्वारों को खोल दें। भीतर के द्वारों को खोलने की

प्रक्रिया है तंत्र, जिसका प्रयोजन है चेतना का विस्तार और शक्ति का विमोचन। तंत्र शब्द दो धातुओं से बना है—तनोति और त्रायते। तनोति का अर्थ होता है फैलाना, अपनी चेतना के आयामों का विस्तार करना, और त्रायते का अर्थ होता है मुक्त कर देना। जैसे एक रबर-बैंड को खींचकर हम उसे फैलाते हैं, वह है चेतना का विस्तार, और जब हम रबर-बैंड को छोड़ देते हैं तो टेंशन मुक्त हो जाता है। यह है शक्ति को स्वतंत्र कर देना।

चेतना और ऊर्जा, ये दो मौलिक तत्त्व हैं जीवन के, जिन्हें शिव-तत्त्व और शक्ति-तत्त्व भी कहा जाता है। योग कहता है कि अभी हमारी चेतना और ऊर्जा दोनों एक-दूसरे से अलग हैं। इन्हें साथ लाना है और साथ लाने की इस प्रक्रिया को ही योग कहते हैं। कुण्डलिनी योग का अध्ययन करोगे तो मालूम पड़ेगा कि सिर के शीर्ष भाग में स्थित सहस्त्रार चक्र में शिव और शक्ति का सायुज्य होता है। जब दोनों एक होते हैं उस समय चेतना अपनी पूर्ण जागृत अवस्था में होती है। उस समय व्यक्ति त्रिकालदर्शी होता है, उसके लिए काल और देश में कोई भेद नहीं रहता। जब यही शक्ति शिव से अलग होती है तब सृष्टि का निर्माण होता है। यह शक्ति सृष्टि की अलग-अलग अवस्थाओं का निर्माण करती हुई अंत में मूलाधार चक्र में जाकर सो जाती है।

आज हमलोग जिस अवस्था में हैं, वह वियोग की स्थिति है, योग की नहीं। वियोग की स्थिति में शिव ऊपर बैठे हैं और शक्ति नीचे। दोनों एक-दूसरे से दूर हैं। यह है वियोग की अवस्था और इस अवस्था में संताप, क्लेश, दु:ख, संघर्ष और अशांति है। कुण्डलिनी योग के अनुसार जब इसी शक्ति को जागृत करके पुन: इसका सहस्त्रार में शिव से मिलन कराओगे, तब आप में अंतर्जागृति की अवस्था आयेगी। अंतर्जागृति की अवस्था में आप स्वयं को उस ब्रह्माण्डीय तत्त्व से जोड़ पाओगे जो शाश्वत और सनातन है, जो सभी का आधार है। इसी को कहते हैं योग।

शिव और शक्ति का यह मिलन मात्र दार्शनिक या धार्मिक मान्यता नहीं है, यह जीवन का एक व्यावहारिक सत्य है, जिसमें हमें मन, बुद्धि, भावना, कर्म और शरीर, इन सबको संयमित, संतुलित एवं व्यवस्थित करके चलना है। जो इस मार्ग पर चल पड़ता है, वह एक दिन अपने भीतर आत्मशुद्धि की अवस्था को प्राप्त कर प्रकाश के स्वभाव को प्राप्त करता है।

तमस् से सत्त्व की ओर

सांख्य दर्शन में तमोगुण को स्थितिशीलत्व, रजोगुण को क्रियाशीलत्व और सत्त्वगुण को प्रकाशशीलत्व कहा गया है। तमोगुण एक स्थिति, एक अवस्था को दर्शाता है। जैसे यह पण्डाल है, इसका एक आकार है, एक सीमा है। यह है तमोगुण की अभिव्यक्ति जिसमें वस्तु एक अवस्था में बँध चुकी है, एक स्थिति को प्राप्त

कर चुकी है। जब यह सीमा टूट जाती है और स्थिति के भीतर वस्तु मुक्त हो जाती है, तब उसका स्वरूप होता है प्रकाश का और वह है सत्त्वगुण।

हमारी आध्यात्मिक परम्परा के अनुसार जीवन की यात्रा तमोगुण से सत्त्वगुण की ओर है। तमोगुण की अवस्था से सत्त्वगुण तक की यह यात्रा रजोगुण का सहारा लेते हुए पूरी की जाती है। अगर हमें इस स्थान से दूसरे स्थान जाना हो तो हम किसी यान का, यातायात के साधन का सहारा तो लेंगे ही। यातायात रजोगुण है, जिसका संबंध मनुष्य के कर्मों के साथ होता है। आप जो भी प्रयास करते हो, चाहे आध्यात्मिक साधना के रूप में या सांसारिक कर्म के रूप में, वे सभी माध्यम बन सकते हैं आप को तमोगुण से सत्त्वगुण की ओर ले जाने के लिये।

संसार में जो व्यक्ति निष्कपट भाव से जीता है, जिसके मन में छल नहीं होता, जो सरल और सहज है वह व्यक्ति सत्त्वगुण को सहजता से प्राप्त करता है। उसे कोई विधि बतलाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसके जीवन में सद्गुणों का वास पहले से ही रहता है। लेकिन जिस व्यक्ति में छल, कपट, महत्त्वाकांक्षा और वासना है, उसे सिखलाना पड़ता है कि अपने कर्मों को बदलने के लिये तुम्हें क्या करना पड़ेगा। उस व्यक्ति में सहजता और सरलता के बजाय कटुता रहती है।

रामचरितमानस में रामजी कहते हैं, 'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।' उनका अभिप्राय है कि जिसके मन में छल है, कपट है, छेद है, ऐसा व्यक्ति मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। छल और कपट, ये दो शब्द तो समझ में आते हैं, लेकिन यहाँ पर छिद्र शब्द का प्रयोग क्यों किया गया?

अगर किसी बाल्टी में छेद हो जाए तो क्या उस बाल्टी में पानी रहेगा? एक बार दस साल की उम्र में हम अपने गुरुजी के साथ यात्रा कर रहे थे। यह चालीस साल पहले की बात बतला रहा हूँ जिस समय पानी की बोतलें नहीं थीं, कुएँ से ही

पानी लेना पड़ता था। गर्मी का दिन था, पानी समाप्त हो गया था। हमलोग देख रहे थे कि कहाँ पर कुआँ मिले ताकि कुछ पानी निकाल सकें। रास्ते में एक स्थान पर कुआँ दिखलायी दिया। गाड़ी रुकी और हम दौड़ते हुए गए। बाल्टी रखी थी, रस्सी रखी थी, हमने बाल्टी उठाई, कुएँ में डाली, और उसे ऊपर खींचा। लेकिन जब ऊपर खींचा तो बाल्टी खाली थी। फिर बाल्टी को डाला पानी में, उसे डुबाया अच्छे से, और फिर ऊपर खींचा। लेकिन ऊपर आते-आते सब पानी बह गया क्योंकि बाल्टी में छेद था। हमने अपने गुरुजी के पास जाकर कहा कि बाल्टी में छेद है, पानी उसमें ठहरता नहीं है, दूसरी बाल्टी चाहिये। खैर दूसरी बाल्टी आई, हमलोगों ने पानी लिया और चल पड़े। बात वहीं खत्म।

उसके बाद एक बार गुरुजी ने आदेश दिया कि तुमको ऐसा काम करना है। जैसा उन्होंने कहा था हमने वैसा ही करने का प्रयास किया। इस काम का संबंध किसी दूसरे व्यक्ति के साथ था, लेकिन वह व्यक्ति नहीं माना कि गुरुजी का ऐसा आदेश है। उसने सोचा कि हम अपने मन से उसे कुछ बोल रहे हैं, जबकि हम कह रहे थे कि गुरुजी ने ऐसा आदेश दिया है। छोटे मुँह बड़ी बात हो गई, छोटे

पर कौन विश्वास करता है? हमने गुरुजी के पास आकर कहा कि वह आदमी तो मेरी बात सुनता ही नहीं है। यह भी स्वीकार नहीं करता कि आपने यह बात कही है। तब गुरुजी ने कहा, 'वह इसलिये नहीं मानता क्योंकि उसके मन में छेद है।'

उस समय हमें यह बात समझ में नहीं आई, लेकिन आज समझ में आती है। हम बहुत कुछ पढ़ते हैं, बहुत कुछ जानते हैं, लेकिन क्या हम उसके अनुसार चलते हैं? महाभारत के समय जब कृष्णजी संधि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गये थे और दुर्योधन को बहुत समझाने का प्रयास किया था, तब दुर्योधन ने कहा, *'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः'।* धर्म क्या है, मैं अच्छे से जानता हूँ, लेकिन उस ओर मेरा कोई आकर्षण नहीं है। अधर्म क्या है, यह भी मैं जानता हूँ पर उस अधर्म से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाता हूँ। आपने भी अनेकों ग्रंथों, साहित्यों और शिक्षाओं को प्राप्त किया है, पढ़ा है, जाना है, समझा है, पर जब समय आता है तो क्या आप उस शिक्षा को अपने जीवन में उतार पाते हैं? नहीं, क्योंकि विश्वास नहीं होता कि हम इस परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह विश्वास इसलिए नहीं होता कि हमारे मन में छेद है। जिसके मन में छेद है वह किसी भी शिक्षा, विद्या, आदर्श या संस्कार को अपने जीवन में उतार नहीं पाता। उसका जीवन हमेशा खाली रहता है। इसलिये पहली आवश्यकता है कि हमारे मन में जितने भी छेद हैं, उन सबको ठीक किया जाए, बंद किया जाए ताकि जो जल हम ग्रहण कर रहे हैं वह मन के इस पात्र में ठहरे और वहाँ से बहे नहीं।

वास्तविक कर्म

केवल बाह्य इन्द्रियों द्वारा कर्म करना ही कर्म का असली मतलब नहीं होता। स्वयं को संभालने के लिये हम जो आंतरिक परिवर्तन करना चाहते हैं, वही असली कर्म है। उसे अपने जीवन का वास्तविक कर्म मानकर करना। कर्म तुम्हारे भीतर परिवर्तन लाने के लिये, आत्मशुद्धि के लिये है और जो तुम बाहर कर रहे हो वह तुम्हारा संसार एवं परिवार में कर्तव्य मात्र है। कर्म की यह एक गहन परिभाषा है जो आज आपको दे रहे हैं। आप कहते हो न कि हम कर्म करते हैं। हम कहते हैं, नहीं, आज तक आपने कर्म नहीं किया है। आप केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हो। कर्म अपने भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया को कहते हैं जिससे आत्मशुद्धि और संयम की प्राप्ति हो। कर्तव्य बाहर करो और कर्म भीतर। इसी को कर्मयोग कहा जाता है और यही व्याख्या हमारे मनीषियों एवं गुरुओं ने हमें दी है। हठयोग, राजयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के इस समन्वय से हम अपने जीवन को सुन्दर बना सकते हैं, हम अपने जीवन का उत्थान करने में सक्षम हो पाते हैं। यही सम्पूर्ण योग की प्रक्रिया है।

–7 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक समय था जबकि भारत के लोग योग का नाम सुनकर डरते थे, और विदेशों के लोग भी डरते थे। आज वह जमाना है जब भारतीय लोग इस योगविद्या को अपने देश का गौरव समझने लगे हैं और भारत के बाहर इस योगविद्या को सर्व-दु:खहारी विद्या के रूप में मानने लगे हैं। न केवल भारत के लोग, न केवल यूरोप और अमेरिका के देशों के लोग, बल्कि इस्लामी देशों में भी यह योगविद्या अपने संदेश को लेकर फैल चुकी है। इन विगत वर्षों की अवधि में बहुत जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। संसार के किसी भी देश में कोई शहर ऐसा नहीं जहाँ योग विद्यालय अथवा योगाश्रम नहीं है। किसी भी शहर में चले जाइये, जिस तरह से लायन्स क्लब या रोटरी क्लब होते हैं, उसी तरह योग विद्यालय हैं। क्यों हैं? क्या यह योगविद्या संसार से दूर ले जायेगी, इसलिये यह विद्या बढ़ी? अथवा इस विद्या के द्वारा मनुष्य ने जीवन में जीना सीखा, जीवन में रहना सीखा और कई प्रकार के दु:खों और संतापों को बहादुर की तरह सहना सीखा, यही इस विद्या का महान् प्रताप है।

मनोमय कोष

जीवन को सुखी बनाने के लिये कई आवश्यकतायें हैं, जिनमें एक तो है शरीर, *'धर्मार्थिकाममोक्षाणां आरोग्यमूलम्'*। परन्तु शरीर के ऊपर एक चीज है जो शरीर पर शासन करती है, जिसको ऋषि-मुनि जानते थे, और आज का मनोवैज्ञानिक भी इसको जानने लगा है। शरीर के ऊपर शासन करने वाला है मनुष्य का मन। मन वह नहीं जिसके द्वारा आप सोचते हैं, मन वह है जिसके द्वारा आप अनुभव करते हैं, चेतना जिसको कहते हैं। इस मन की तमाम समष्टि को, इस मन की तमाम वृत्तियों को किस प्रकार हम सुखी बना सकते हैं, किस प्रकार स्वस्थ बना सकते हैं, इसका संदेश भी हमको योग में मिलता है।

अधिकतर लोग शरीर को सुखी बनाने के पक्ष में रहते हैं, परन्तु मन की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। यदि किसी को सिरदर्द होता है, तो वह डॉक्टर के पास जाता है, लेकिन यदि किसी को ईर्ष्या होती है, तो उसके लिये कोई डॉक्टर नहीं है। जिस प्रकार यह स्थूल शरीर है, ठीक उसी प्रकार मनोमय शरीर भी है। वह दिखता नहीं, परन्तु इस शरीर से ज्यादा प्रतिभाशाली है और इस शरीर से कहीं ज्यादा सत्य है और ठोस है। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, और जितना शक्तिशाली यह स्थूल शरीर है, उससे ज्यादा शक्तिशाली वह सूक्ष्म शरीर, वह मनोमय शरीर है। मन को यदि एक शरीर के रूप में देखने का प्रयत्न करोगे तब मालूम पड़ेगा कि जिस प्रकार से

शरीर की बीमारी होती है, वैसे ही मन की भी बीमारी हो सकती है। आज मनुष्य उस स्थिति पर पहुँच चुका है जहाँ उसे शरीर की बीमारी के निवारण के साथ-साथ मानसिक बीमारी के भी निवारण का उपाय करना होगा।

मनोरोगों का विश्लेषण

जिस प्रकार से रोगी अगर रोग में पथ्य ग्रहण नहीं करता, औषधि ग्रहण नहीं करता, किसी प्रकार का परहेज नहीं करता तो ज्यादा बीमार पड़ता है और उस बीमारी के बाद दूसरी बीमारी पैदा होती है, उसी प्रकार से यह जो मन की बीमारी है, वह इतनी व्यापक है कि संसार में जितने भी बड़े-बड़े संग्राम हुए हैं, वे मन की बीमारी के परिणाम हैं।

मानसिक बीमारी केवल उसी को नहीं कहते जिसे आप राँची के अस्पताल में ले जाते हैं। वह तो जब आदमी बिल्कुल बीमार हो जाता है और उसकी बीमारी एक हद को पार कर जाती है तब उसको राँची ले जाते हैं। कभी-कभी यह बीमारी थोड़ी हल्की रहती है। जैसे क्रोध एक बीमारी है, ईर्ष्या एक बीमारी है, जलन एक बीमारी है, चिन्ता एक बीमारी है, डाह एक बीमारी है। ये सभी रोग हैं, इनको आप अनैतिकता मत कहिये, क्योंकि वह एक धार्मिक अवधारणा है। हम लोगों की समझ में नहीं आता और इसीलिये हम लोग इन चीजों को पकड़ नहीं पाये हैं। आज यदि हर एक इन्सान से कहा जाए कि क्रोध अनैतिकता नहीं, कोई धार्मिक कमी नहीं बल्कि एक रोग है, तब जाकर हो सकता है कि आज का मनुष्य कुछ नये ढंग से इसको समझने लगे। हम लोग प्राय: कहते हैं, 'भाई, तुम ईर्ष्या करते हो, तुम तो बड़े नीच हो।' इसकी बजाय हमें बोलना चाहिये, 'भाई, तुम ईर्ष्या करते हो, तुम तो बहुत बीमार हो, तुम्हारा मनोमय शरीर नित्य-निरन्तर बीमार रहेगा।'

मन का उपचार

आप भोजन करते हैं शरीर के लिये। वह भोजन शरीर में जाकर रक्त बनता है और शरीर पुष्ट होता है, बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार मन के लिये भी भोजन और पौष्टिकता की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति के मन को खुराक नहीं मिलता, पौष्टिकता नहीं मिलती, उसका मन दुर्बल रहता है। दुर्बल मन के क्या लक्षण हैं? जिस प्रकार निर्बल शरीर जलवायु के झोकों को सहन नहीं कर सकता, रोगों के झोंकों को सहन नहीं कर सकता, उसी प्रकार से निर्बल मन जीवन के दु:खों को सहन नहीं कर सकता। आये दिन सुनते हैं कि फलाने को हार्ट-अटैक हो गया, फलाने को पैरालिसिस हो गया, लेकिन मैं आपको बतला दूँ कि यह उसी व्यक्ति को होता है जिस व्यक्ति का मनोबल क्षीण रहता है, जिसके मन को पौष्टिकता नहीं मिलती।

इसीलिये हम लोगों के यहाँ योग-मार्ग में मानसिक पौष्टिकता की आवश्यकता पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है और मन की बीमारियों को दूर करने के लिये योग में अनेकों उपाय खोज निकाले गए हैं।

हो सकता है आप कहेंगे कि यदि मन बीमार हो जाए तो होने दो, शरीर का इसके साथ क्या सम्बन्ध! आधुनिक मनोविज्ञान और प्राचीन काल में हमारे ऋषि-महर्षि के शास्त्रों, दोनों ने यह बतलाया है कि सर्दी-जुकाम हो अथवा सिरदर्द, मधुमेह, घुटने का दर्द, कैंसर या अल्सर, यह सब मन से सम्बन्ध रखता है और जब हम मन का उपचार करते हैं तो शरीर का भी उपचार होता है। जब हम मन को ठीक ढंग से रखते हैं तब हमारा शरीर भी ठीक ढंग से रहता है। मन शरीर पर नियंत्रण स्थापित करता है, वह इस शरीर का स्वामी है। इसी मन को दृष्टि में रखते हुए हमारे यहाँ राजयोग की विद्या आई। हम लोगों के यहाँ कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, लययोग, क्रियायोग आदि जितने योगों के नाम आपने सुने होंगे, उनका मूल लक्ष्य है मन को स्वस्थ बनाना, मन की बीमारियों को दूर करना, मन को पौष्टिकता प्रदान करना और मन में जो सहनशीलता की कमी है, उसको बढ़ाना।

यह मन सूक्ष्म है, चेतना के रूप में है, इसको आसानी से पकड़ नहीं सकते। इसे पकड़ने के लिये तब ऋषि-मुनियों ने अनेकों प्रकार के उपाय निकाले और

अनेकों ढंग से इसके बारे में सोचना शुरू किया। भावना के कारण मन बीमार होता है तो भक्तियोग दिया, दैनिक जीवन की कठिनाइयों के कारण जो मन की बीमारी होती है, उसके लिये कर्मयोग दिया। चित्त के विक्षेप के कारण, चित्त की चंचलता के कारण मन के अन्दर जो निराशायें, बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उसके लिये राजयोग दिया और नासमझी की वजह से, जिसको अज्ञान कहते हैं, मनुष्य को मृत्यु से जो कष्ट होता है, या निन्दा से जो कष्ट होता है, धन-हानि, पुत्र-हानि से जो कष्ट होता है, इस प्रकार के कष्टों से मन जो विक्षिप्त और विकृत हो जाता है, बीमार हो जाता है, उसके लिये ज्ञानयोग दिया। गलत भोजन करने के कारण या शरीर के अन्दर गलत प्रक्रियाओं के कारण शरीर में जो विकृत द्रव्य बनने लगते हैं, उन्हें दूर करने के लिये हठयोग की प्रणाली दी गई है।

मन की मीमांसा

यह मन आखिर क्या है? मुझे मालूम पड़ता है कि मन है, क्योंकि मैं विचार करता हूँ, मेरे अन्दर भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, मैं हर प्रकार की चीजों को जानता हूँ। लेकिन इस मन का दर्शन कैसे हो? काम, क्रोध, लोभ या मोह मन नहीं हैं, मन के विकार हैं। मन के विकारों को जानने के लिये और इस मन की समष्टि को जानने के लिये हम लोगों के यहाँ ध्यान योग की विद्या है। ध्यान में चाहे आप 'राम' पर ध्यान करें, चाहे 'कृष्ण' पर, चाहे ॐ पर, चाहे साकार पर, चाहे निराकार पर, किसी पर भी ध्यान करें, ध्यान में जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह कुछ नहीं, केवलमात्र आपकी चेतना रूप लेकर आती है। इसी समय ध्यान की क्रिया में अनेकों प्रकार के स्वप्न, अनेकों प्रकार के अनुभव, अनेकों प्रकार की बाधायें साधकों को दिखलाई देती हैं। इन्हें आध्यात्मिक अनुभव नहीं, मन की बीमारियाँ या संस्कार के दोष जानना चाहिये।

जिस रूप पर भी आप ध्यान करते हैं, वह रूप जब अपने सामने स्पष्ट होने लगता है, उसके पहले कई चीजें अपने अन्दर से आती हैं। आपकी सारी संस्कार राशि जागती है और उसके बाद ध्यान करते-करते धीरे-धीरे जब हमारा मन सबल होने लगता है, स्वस्थ होने लगता है, उसमें असीम शक्ति उत्पन्न होती है, वही असीम शक्ति मनोबल है। जिस प्रकार से शरीर को हम पुष्ट बना सकते हैं, उसी प्रकार से मन को भी पुष्ट बना सकते हैं। जिस प्रकार से शरीर बीमार होता है, उसी प्रकार से मन भी बीमार होता है। हम लोगों को शरीर के बारे में बहुत बातें समझाई गई हैं, बड़ा साइन्स निकला है, तो भी लोग बीमार हैं, परन्तु मन के बारे में ये बातें समझाई नहीं गईं।

जब मैं भारत के बाहर गया, और मैंने लोगों से कहा कि शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य भी जरूरी है, तो वे लोग इस बात को मान गये। मैंने यह भी बतलाया कि मानसिक स्वास्थ्य का एक ही रास्ता है, दो रास्ते नहीं हैं। जैसे

हम लोग शारीरिक स्वास्थ्य के लिये एक रास्ता बतलाते हैं–जितना पचा सकते हो, उतना खाओ। यह शारीरिक स्वास्थ्य का रहस्य है। जो इस नियम का पालन करता है, मृत्यु भी उससे सहमती है। उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी एक नियम है–उतना ही विचार करना जितना पचा सको।

ध्यान का अभ्यास

लोग अपने विचारों को स्थिर करना नहीं जानते। पद्मासन लगा लेते हैं, आँखों को बन्द कर लेते हैं, परन्तु आँखें बन्द कर लेने के बाद भी अपने मन को ऐसा पकड़ते हैं, जैसे बच्चा गधे के पैर को पकड़ता है, जो उसको लात मार देता है। फिर मन को कैसे पकड़ा जाए? इस मन पर पकड़ ध्यान में शुरू होती है, और वह ध्यान कैसे शुरू होता है? जैसे छोटे बच्चे को आप आगे ले जाते हैं। कई बार लोग मुझसे कहते हैं कि हम बीस सालों से ध्यान करते आ रहे हैं, अब आप हमको ऊँचा रास्ता बतलाओ। हम उनसे यही कहते हैं कि भाई, ध्यान मार्ग में जो सबसे सरल मार्ग है, वही सबसे ऊँचा मार्ग है। ध्यान बड़ी चीज नहीं है, हाँ, महान् वस्तु है। कठिन चीज नहीं है, मगर करना जानना चाहिये। इसको करने के लिये कुछ नियमों का पालन आवश्यक है।

सबसे पहली चीज, किसी भी आसन में बैठ जाओ, फिर आँखें बन्द कर लो या आँखें खुली ही रहें। फिर सारे शरीर का ध्यान करो, पूरे शरीर की अनुभूति करो। न केवल हाथ की, न केवल नाक की, न सिर की, न पैर या पीठ की, समग्र शरीर की अनुभूति। इसको 4-5 मिनट करना। करते-करते शरीर स्थिर हो जायेगा। फिर शरीर को हिलाना नहीं, शरीर ऐसा हो जाए जैसे प्रतिमा की तरह अटल हो। उसके बाद अपनी सहज श्वास को पकड़ो। यह सहज श्वास है जिसे हम लोग व्यर्थ में गवाँ रहे हैं। किस तरह पकड़ो? जैसे कबीरदासजी ने कहा है–

चाँद सूरज दो बनें मसलची,
सुरत सुहागिन नाच रही!

यह सुरत है, यह चेतना है, जो ऊपर और नीचे नाचती है। मैं इसे केवलमात्र देखता हूँ, पहरेदार की तरह। जिस प्रकार एक व्यक्ति रस्सी को पकड़कर कुएँ में उतरता है, उसी प्रकार कहीं पर भी आपका मन जाए, कहीं भी आपका मन भटके, कुछ भी आपके मन को हो जाए, मगर जो आपके हाथ में सुरत की रस्सी है, उसे छोड़ना नहीं। यह सुरत की डोर है और इस सुरत की डोर को लेकर नीचे उतरना पड़ता है। भगवान बुद्ध इसके बारे में बोलते थे। बौद्ध दर्शन में इसका बहुत बड़ा आख्यान है। हमारे हिन्दू धर्म में भी है, जैन धर्म में भी है, सूफियों में भी है, मुसलमानों में है, ईसाइयों में भी है, सब धर्मों में इसके बारे में कहा गया है। जब

तुम बैठ जाओ, आँखों को बन्द कर लो, और यह जानो कि मैं बैठ गया हूँ, फिर यह जानो कि मैं जानता हूँ कि मैं बैठा हूँ। साक्षी, कर्म का साक्षी और साक्षी का साक्षी। यह देखो कि मैं बैठा हूँ, फिर यह जानो कि मैं जानता हूँ कि मैं बैठा हूँ। जब इतना हो जाए तब उस श्वास पर ध्यान शुरू करो, जो अपने आप चलती है। कबीरदासजी ने कहा है–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं सुरता गाई।
छः सौ सहस इक्कीसो जाप, अनहद उपजै आपे आप॥

आप मेरी बात भी सुन सकते हैं, और साथ ही अपना ध्यान भी कर सकते हैं, 'मैं श्वास ले रहा हूँ, मैं श्वास छोड़ रहा हूँ।' जब ध्यान में मन विचलित हो तो अपने मन में सोचना चाहिये कि मेरा मन उधर जा रहा है। फिर श्वास का ध्यान। अब मेरा मन ध्यान कर रहा है। जैसे-जैसे मन की गति होती जाए, जैसे-जैसे मन भागता है, क्षिप्त होता है, विक्षिप्त होता है, एकाग्र होता है, तो उन सब स्थितियों में साक्षी बनना होगा। मूढ़ होकर के ध्यान नहीं करना, मूढ़ अवस्था में ध्यान करोगे तो लय अवस्था को प्राप्त करोगे और हो सकता है पगला भी जाओ, बहुतों को होता है। बहुत-से लोग तो ध्यान करके ऐसा भूल जाते हैं, जैसे गाँजा पीकर बैठे हों और समझते हैं कि उन्हें अच्छा ध्यान लगा।

हमने भी अपने गुरुजी से एक बार ऐसा बोला था। हम शाम को बैठ गये पद्मासन लगाकर, सबेरे उठे तो बड़ी खुशी हुई कि अहा! छः घंटे पद्मासन लगाये, फर्स्ट क्लास समाधि लगी हमको। हमने डायरी में लिखकर स्वामीजी के टेबल पर रख दिया। स्वामीजी मेरी ओर देखकर हँसने लगे, बोले, 'अरे, समाधि इतनी जल्दी नहीं लगती है, क्योंकि समाधि लगाने वाले को समाधि का ज्ञान रहता है। समाधि वाले को केवल समाधि का ही ज्ञान नहीं रहता, ज्ञान का भी ज्ञान रहता है, अपना ज्ञान रहता है, अपने को देखने वाले का ज्ञान रहता है, अपने को देखने वाले के देखने वाले का ज्ञान रहता है। वह द्रष्टा के द्रष्टा का द्रष्टा है, वह कूटस्थ है।' बहुत साल बीते तब समझ में आया कि अपनी क्या गलती थी।

लोग जप करते हैं, उन्हें पता ही नहीं रहता कि जप कर रहे हैं। वे माला पर माला फेरते हैं, मन बिल्कुल मूढ़ की तरह रहता है, मगर चलता है। आवश्यकता क्या है कि जब श्वास पर ध्यान करो, केवल श्वास का ही ध्यान नहीं करो, परन्तु 'मैं ध्यान कर रहा हूँ' इसका भी ध्यान होना चाहिये। तब जाकर साक्षी का उदय होता है। किस वक्त इस स्थिति को पार करके असली ध्यान में जाना चाहिये और किस प्रकार गहराई में जाकर अपने अन्दर में चेतना का अनुभव करना चाहिये? जो लोग साकार के उपासक हैं, उन्हें भी परम तत्त्व तक जाने का पूरा अधिकार है, जा सकते हैं और जो निराकार को मानते है, वे भी आगे

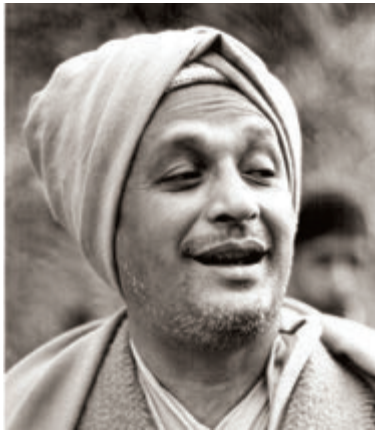

जा सकते हैं। मगर वास्तव में निराकार नाम की कोई वस्तु नहीं है। आँख बन्द करके जब आप बैठते हो और जब मन धीरे-धीरे लय अवस्था को प्राप्त होने लगता है, ठीक उसी समय अपने इष्ट का ध्यान करना चाहिये। यह मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य है, मन के अन्दर शक्ति के सृजन का रहस्य है, मन के अन्दर संकल्प जागरण का रहस्य है। यह जीवन के उस पार की बातें नहीं, जीवन के इस पार की बातें हैं।

सबल मन का लक्षण

एक बार मैं एक कॉलेज में गया था तो वहाँ के विद्यार्थियों ने पूछा, 'स्वामीजी संकल्पशक्ति का क्या रहस्य है?' हमने पूछा, 'यदि हम पाँच मन का बोझा उठाना चाहें तो उसका क्या रहस्य है?' उन्होंने कहा, 'सबल माँसपेशियाँ, सशक्त शरीर'। तब हमने कहा कि संकल्पशक्ति का भी रहस्य सबल मन है। जैसे कोई बीमार या कमजोर आदमी अपने से कुछ नहीं कर सकता, वैसे ही जिस आदमी का मन कमजोर होता है, यदि उसे गाली दे दो, कुछ भी कह दो, तो उसे रात-रात भर नींद नहीं आयेगी।

एक समय हमारे जीवन में ऐसी घटना घटी कि लगातार कोई कुछ बोले, पर हमारी समझ में नहीं आता था कि क्या बात है। हमने सोचा बिस्तर में जाकर चिन्तन करेंगे, तो हमें नींद आ गई। सोचा दूसरे दिन सोचेंगे, फिर नींद आ गई। हमने सोचा इसका कारण क्या है। हमने लोगों से पूछा, भाई हमारे मन पर तो कोई असर नहीं पड़ता, कहीं हम बीमार तो नहीं हैं। फिर अन्वेषण के बाद पता चला कि जो आदमी जितना बलिष्ठ होता है, उसे भार कम मालूम पड़ता है, और जो आदमी जितना कमजोर होता है, उसे थोड़ा भी भार ज्यादा मालूम पड़ता है। जिसके मन में निर्बलता है, उसे जीवन में निन्दा और स्तुति का, सफलता और असफलता का, हार और जीत का, सुख और दु:ख का भार मालूम पड़ता है। मगर जैसे-जैसे आपका मन सबल होते जाता है, वैसे-वैसे इन द्वन्द्वों का भार कम प्रतीत होने लगता है। निन्दा मालूम पड़ती है, पर प्रभाव नहीं होता। एकाएक झोंका आता है फिर आदमी संभल जाता है।

क्या गृहस्थाश्रम में इस प्रतिभा की जरूरत नहीं है? आये दिन जीवन में कितनी घटनायें और कितनी बातें होती हैं। इस प्रकार के मानसिक बल को प्राप्त करने के लिये आज के पदार्थवादी, भौतिकवादी लोगों को योगमार्ग की नितान्त आवश्यकता है। आप भगवान को मानो या न मानो, मगर योग का सम्बन्ध आपके अपने मन से है।

सत्कर्म का परिणाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

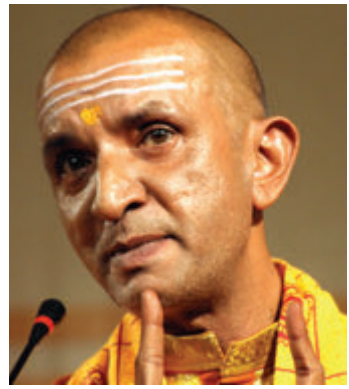

कर्म केवल इन्द्रियों से नहीं, मन और भावनाओं से भी होता है। कर्म जीवन का एक व्यवहार भी है। जब तुम्हारे कर्म सकारात्मक होते हैं तब वे सेवा का, कर्तव्य का रूप लेते हैं।

जब सिकंदर भारत आया और पौरस के साथ उसका युद्ध हुआ, तो एक दिन शाम के समय उसने देखा कि दोनों तरफ के सैनिक मैदान में घायल पड़े हैं और एक कृशकाय व्यक्ति सैनिकों के पास जाकर उनका उपचार कर रहा है। वह व्यक्ति यूनानी नहीं, भारतीय था, फिर भी वह केवल भारतीय सैनिकों का ही नहीं, यूनानियों का भी उपचार कर रहा था। जब सिकंदर ने यह दृश्य देखा तो उस व्यक्ति को बुलाकर पूछा, 'तुम यह क्या कर रहे हो? हम तो तुम्हारे देश के शत्रु हैं, तुम शत्रु का उपचार क्यों करते हो?'

उस व्यक्ति ने कहा, 'मैं एक चिकित्सक हूँ और मेरे लिये न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। जो भी घायल है वह मेरे लिये मरीज है, और मेरा कर्तव्य है उसका उपचार करना। मरीज चाहे कोई भी हो, उसका इलाज करना ही मेरा कर्तव्य है।'

सिंकदर ने जब उस व्यक्ति से नाम पूछा तो उसने कहा, 'थेरावान।' सिकंदर ने थेरावान से कहा, 'तुम्हारे कर्म ने मेरे हृदय को परिवर्तित कर दिया है। आज से मेरे देश में चिकित्सा तुम्हारे नाम से जानी जायेगी।' और यूनान में चिकित्सा का नाम पड़ा थेरेपी, उस कृशकाय चिकित्सक, थेरावान के नाम पर। अगर वह अपने ही सैनिकों का उपचार करता और घायल शत्रु सैनिकों को मरने देता तो संभवत: आज उसका नाम थेरेपी के रूप में विश्व में प्रसिद्ध नहीं होता। लेकिन यह उसके कर्मों का परिणाम था कि एक क्रूर सम्राट् का हृदय परिवर्तन हुआ और उस क्रूर समाट् ने एक अज्ञात व्यक्ति को सम्मानित किया। यह अच्छे कर्म का परिणाम है।

इसलिये हमारी वैदिक और यौगिक संस्कृति में यह कहा जाता है कि तुम्हारे द्वारा जो भी कर्म होते हैं, उनसे हमेशा, हमेशा, हमेशा दूसरों का हित, कल्याण एवं मंगल होना चाहिये। जिस कर्म के द्वारा दूसरे का कल्याण नहीं होता, वह कर्म तुम्हें पतन की ओर, नरक की ओर ले जाता है, और जिस कर्म से तुम्हारा भी और दूसरों का भी कल्याण होता है, वह कर्म तुम्हें ईश्वरत्व की ओर, दिव्यता की ओर ले जाता है।

–7 जून 2014, तुंडीखेल मैदान, काठमाण्डू, नेपाल

सार्थक सीखें

योग अनुदेशक सत्र, मार्च 2015 के प्रतिभागियों के अनुभव

इस सत्र के दौरान मैंने सकारात्मकता, सौम्यता, शांति, सजगता, हर चीज को बेहतर तरीके से करना–ऐसी अनेक बातें सीखीं। इनमें मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज शायद सकारात्मकता थी क्योंकि सत्र से पहले मैं पूरी तरह विषादग्रस्त और निरुत्साह था। मेरी सोच भी नकारात्मक ही थी। लेकिन अब मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मेरी ऊर्जा और मनोदशा अव्वल दर्जे की हो गई है। ऊर्जा के साथ-साथ सजगता का भी विस्तार हुआ है। पहले मैंने योग के केवल शारीरिक लाभ अनुभव किये थे, लेकिन अब मानसिक स्तर पर भी महसूस हुआ है। मुझे अपने मूड और व्यवहार में ज्यादा खुशी और उत्साह का अनुभव हुआ। यह सब मेरे भीतर जागृत हुई सकारात्मकता का ही परिणाम था।

जो चीज सबसे मुश्किल लगी वह थी टॉयलेट की सफाई। घर पर तो यह काम किया था लेकिन कॉमन टॉयलेट कभी साफ नहीं किए थे। आश्रम में आते ही पहले तीन दिन मुझे यही काम मिला, जिससे मैं बड़ा उद्विग्न रहा। लेकिन मैं अपनी प्रतिक्रिया को सम्भाल पाया और फिर तो यह काम बड़ी लगन के साथ किया।

सत्र के दौरान सबसे आनन्ददायक अनुभव प्रतिदिन का सुन्दरकाण्ड पाठ रहा। आश्रम आने से पहले मुझे किसी भी तरह के मंत्रों का पाठ करना भारी काम लगता था। लेकिन अब यह बहुत सरल और सहज लगता है, साथ ही भक्ति भावना और

आस्था भी बढ़ गई है। मैंने घर लौटकर भी सुन्दरकाण्ड का पाठ नियमित रूप से करने का निश्चय किया है। आश्रम में बिताए ये दिन यादगार रहेंगे और मैं यहाँ बार-बार आने की आशा करता हूँ।

– घनश्याम सिंह, बाँका

जीवन में जो कुछ भी आए, उसका सामना करना, उसे स्वीकार करना मैंने यहाँ रहकर सीखा। यहाँ की पवित्र और सुन्दर जीवनशैली में मैंने रोगी से भोगी से योगी बनने की सम्भावना स्पष्ट रूप से अनुभव की है।

– दुर्गा बासेल, पोखरा, नेपाल

जब-तब सजगता का अभ्यास करते रहना, सौम्यता की मनोवस्था बनाए रखना, प्रतिपक्ष भावना को समझने और जीवन में उतारने की कोशिश, ये इस सत्र से मिली कुछ मुख्य शिक्षाएँ हैं। ज्योति मंदिर में संध्या साधना के दौरान स्तोत्रपाठ और कीर्तन एक अविस्मरणीय अनुभव रहा। साथ ही आश्रम का सुन्दर, स्वच्छ और शान्त वातावरण, जो स्वयं ही सौम्यता का भाव ले आता है, उसकी ढेर सारी स्मृतियाँ भी अपने साथ ले जा रही हूँ।

– अपर्णा अशोक मोरे (मंत्रश्रुति), मुंबई

इस सत्र में भाग लेकर हमने पाया कि आसनों के अभ्यास को पूरी सजगता और सही तरीके से करने पर ज्यादा लाभ होता है, और प्राणायाम, योग निद्रा एवं ध्यान के अभ्यासों को अपनाकर हम अपने शरीर एवं मन को पूरा रिलैक्सेशन पहुँचा

सकते हैं और ऊर्जान्वित महसूस कर सकते हैं। यह भी जाना कि मौन का नियमित अभ्यास करने से अपने विचारों और व्यवहारों को समझने का अवसर मिलता है। इन सब के अलावा स्वान साधना और प्रतिपक्ष भावना भी मुख्य शिक्षाएँ रहीं।

हमारी जीवनशैली हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह प्रभावित करती है, इसे भी हमने स्पष्ट अनुभव किया। यहाँ की सरल जीवनशैली, स्वयं के बारे में सजग रहने का प्रयास, स्वामीजी के साथ सत्संग, बाल योग मित्र मण्डल के बच्चों का कीर्तन-भजन, पहली बार महामृत्युंजय मंत्र जप तथा रुद्राभिषेक एवं श्रीयंत्र अभिषेक में भाग लेना, यह सब बहुत अच्छा लगा।

– राकेश कुमार उपाध्याय, रोहतास

शुचिता, चाहे वह शौचालय की हो या चित्त की, उससे कितनी शांति और खुशी आती है, यह यहाँ से मिली शायद सबसे बड़ी सीख है। हर कक्षा के बाद ताज़गी और स्फूर्ति का अनुभव भी इस सत्र का एक सुखद और यादगार अनुभव रहा।

– किशोर कांति मजूमदार, बरौनी

आश्रम में रहकर और सत्र में भाग लेकर केवल श्वासों की ही सजगता नहीं सीखी, बल्कि अपने जीवन में हर पल, हर क्षण सजग रहने की सीख पाई। प्रत्येक कार्य समय पर होना चाहिए। इतना ही नहीं समय का सदुपयोग होना चाहिए। हर कार्य तन्मयता और सजगता के साथ होना चाहिए। साथ ही आश्रम जीवन ने आत्मनिर्भर होना सिखाया। जो व्यक्ति हर कार्य को कर लेगा, वह किसी दूसरे पर निर्भर नहीं होगा। संक्षेप में मैंने यहाँ योग के माध्यम से जीवन जीने की कला सीखी। जो अपने आपको बदलना चाहेंगे, सुधारना चाहेंगे, उन्हें यहाँ की सारी चीजें अच्छी लगेंगी।

– मंजुला सिन्हा, भागलपुर

आश्रम में रहकर मैंने सीखा कि कैसे अपने से अलग व्यवहार, विचार और आचार वाले लोगों के साथ भी अपनत्व की भावना से रहें। यही नहीं, उनसे एक लगाव भी धीरे-धीरे बढ़ने लगता है, जिन्हें हम जानते तक नहीं थे।

साथ ही मन की भावना पर नियंत्रण करना सीखा। पूरे आश्रमवास के दौरान मैंने कभी क्रोध नहीं महसूस किया, चाहे स्थिति कितनी भी विपरीत थी। प्रतिपक्ष भावना और सौम्यता बनाए रखना का प्रयोग बड़ा आनन्ददायक रहा।

अपनी एलर्जी की बीमारी पर खुद ही प्रयोग कर विजय प्राप्त करना जीवन का एक आह्लादकारी अनुभव रहा। अपने स्वरों को सम रखकर मैंने यह प्रयोग किया जो ठीक उन्हीं दिनों प्राणायाम की कक्षा में सिखाया जा रहा था। दवाइयाँ पास में उपलब्ध होने पर भी उनकी जरूरत नहीं पड़ना मेरे लिए एक चमत्कार की तरह था।

– बेनू लाल (विवेकानन्द), राँची

इस योग सत्र में मैंने यह बहुत नज़दीक से समझा है कि हम अपने समय का सदुपयोग किस तरह कर सकते हैं। एक-एक पल में हो रहे उच्च स्तर के परिवर्तनों को करीब से महसूस किया, जैसे अपने विचारों में परिवर्तन, विलीन हो रही संस्कृति का अपने भीतर दुबारा जगना, विधिवत् रूप से अनुशासित जीवन जीना और आने वाले समय को सुन्दर बनाने का प्रयास निरंतर करना।

– राकेश कुमार झा, बैंगलौर

यहाँ आकर योग का असली मतलब सीखा– शरीर, मन और भावना को एक करना। योग के जरिये अपनी जीवनशैली को फाइनट्यून करना, उसे सरल बनाना, योग कैप्सूल्स और स्वान साधना का प्रयोग करना, ऐसी बहुत-सी उपयोगी चीजें सीखीं।

– सुश्री सुप्रिया, मधुबनी

आध्यात्मिक नेपाल की खोज

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

विश्व योग सम्मेलन के बाद अप्रैल, 2014 से योग यात्राओं का जो क्रम प्रारंभ हुआ उसका अगला पड़ाव नेपाल था। इस यात्रा से नेपाल में सत्यानन्द योग का पदार्पण तो हुआ ही, साथ ही नेपाल के बारे में मुझे गहराई से जानने का अवसर भी मिला। श्री स्वामीजी की माताजी नेपाली थीं और कई सालों से मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं नेपाल जाकर उनके सम्मान में सत्यानंद योग का झण्डा फहराऊँ। इसी भावना के साथ इस कार्यक्रम का शुभारम्भ और संचालन हुआ।

इस यात्रा के दौरान मैंने व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा अनुभव किया कि नेपाल के लोग एक ऐसी चीज की खोज कर रहे हैं जिससे वे अपने जीवन में पूर्णता अनुभव कर सकें। इस पूर्णता का मैंने नेपाल के अधिकांश लोगों में अभाव पाया, चाहे वे शहरी हों या ग्रामीण। लोग किसी तरह जी रहे हैं, लेकिन जीवन में जो उमंग, उत्साह और प्रेरणा होनी चाहिए, उसका नितांत अभाव है। वे अपनी स्वाभाविक, आध्यात्मिक प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। जब कभी मनुष्य के जीवन में ऐसी दूरी आने लगती है तब जीवन में भटकाव आता है। व्यक्ति का ध्यान अनावश्यक चीजों की ओर आकर्षित होने लगता है। पिछले बारह सालों से चली आ रही राजनैतिक उथल-पुथल के कारण नेपाली लोगों की मानसिकता पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उनका मन शांत नहीं है। साथ ही वहाँ के बुजुर्गों और युवाओं की मानसिकता में काफी दूरी आ गई है।

नेपाल की इस वर्तमान विषम परिस्थिति को देखकर मुझे लगा कि अगर किसी चीज से नेपाल को पुन: एकीकृत एवं जागृत किया जा सकता है तो वह है 'साधु-सिद्धांत'। साधु-सिद्धांत से मेरा आशय स्वामी शिवानंद के सिद्धांत से है, जिसमें योग और सेवा की प्रधानता होती है। हर साधु के लिए यही दो सिद्धांत मायने रखते हैं, जिन्हें उसे अपने जीवन में आत्मसात् करना होता है। यही दो सिद्धांत नेपाल के पुनर्जागरण में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। योग और सेवा के माध्यम से नेपाली लोगों के जीवन में संतुलन, सद्भावना और सामंजस्य वापस लाये जा सकते हैं।

नेपाल में वैसे तो अनेक योग शिक्षक हैं, लेकिन किसी भी ठोस और स्थायी काम के लिए मात्र शिक्षक पर्याप्त नहीं। इसके लिए समर्पित संन्यासियों का होना जरूरी है। गृहस्थ योग शिक्षकों की अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ, जिम्मेवारियाँ और जरूरतें होती हैं जिनके कारण वे योग के प्रति पूरी तरह समर्पित होकर कार्य नहीं कर सकते। इसलिए मैंने अपनी नेपाल यात्रा के दौरान यह घोषणा की है कि नेपाल में एक आश्रम की स्थापना की जाएगी जिसका निर्देशन बिहार योग

विद्यालय द्वारा किया जाएगा। इस आश्रम का संचालन किसी कर्म संन्यासी अथवा गृहस्थ योग शिक्षक द्वारा नहीं किया जाएगा क्योंकि उनके अपने व्यक्तिगत दायित्व और लक्ष्य होते हैं। यह आश्रम ऐसे समर्पित लोगों द्वारा चलाया जाएगा जो योग के विकास और संस्कृति के जागरण पर पूरा ध्यान केन्द्रित कर सकें। और ऐसा होगा भी क्योंकि यह इस भूमि की पुकार है और भविष्य में इस पुकार का परिणाम अवश्य सामने आएगा। चार-छः वर्षों में हम नेपाल में एक सुंदर यौगिक संस्कृति की नींव जरूर रख पाएँगे।

मेरे विचार से नेपाल में आध्यात्मिक जागृति के लिए अब उपयुक्त समय आ चुका है। नेपाल में एक कहावत है, 'जाग मच्छेन्दर गोरख आया!' उसी को मैंने थोड़ा-सा बदल दिया है-'जाग नेपाल निरंजन आया!' निश्चित रूप से यह एक प्रेरक और उत्साहवर्द्धक यात्रा रही। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि मैंने आध्यात्मिक नेपाल की थाह पा ली है। हिप्पी लोगों ने अगर साठ-सत्तर के दशक में 'गाँजा नेपाल' की खोज की थी तो मैंने 'आध्यात्मिक नेपाल' को खोज निकाला है।

–15 जून 2014, गंगा दर्शन, मुंगेर

योग युग

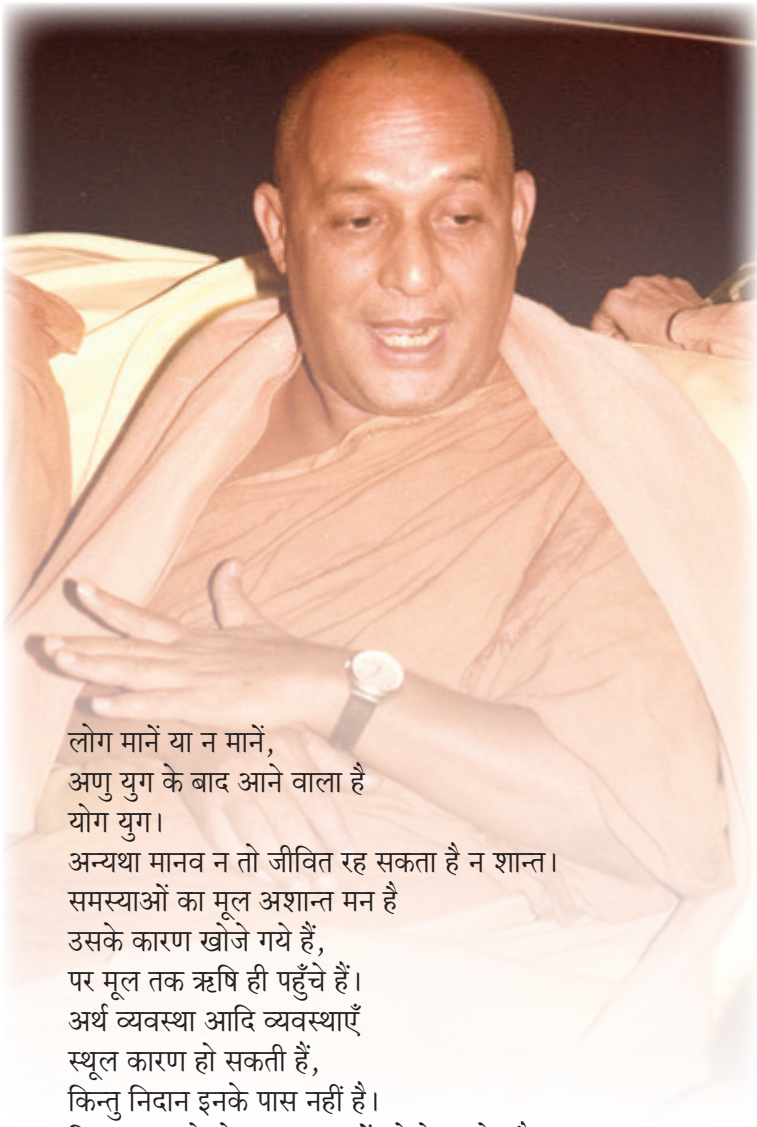

लोग मानें या न मानें,
अणु युग के बाद आने वाला है
योग युग।
अन्यथा मानव न तो जीवित रह सकता है न शान्त।
समस्याओं का मूल अशान्त मन है
उसके कारण खोजे गये हैं,
पर मूल तक ऋषि ही पहुँचे हैं।
अर्थ व्यवस्था आदि व्यवस्थाएँ
स्थूल कारण हो सकती हैं,
किन्तु निदान इनके पास नहीं है।
विश्वास न हो तो युग-घटनाओं को देख लो और
आगे भी देखते जाओ।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

श्री रामचरितमानस–सुन्दरकाण्ड

संन्यासी अवलोकितेश्वर

पृष्ठ 203

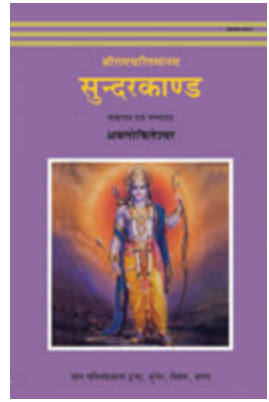

नया प्रकाशन

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की प्रेरणा व स्वामी निरंजनानंद जी के कृपापूर्ण मार्गदर्शन में श्रीरामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड का शब्दानुवाद किया गया है। श्री स्वामीजी का निर्देश है कि तुलसीदास जी ने जैसा ग्रंथ लिखा है, उसे वैसा ही समझा जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए ही यह संकलन व संपादन कार्य किया गया है।

सुन्दरकाण्ड में बड़ी सुन्दर बातें कही गयी हैं और सुन्दर शब्द भी अनेकों बार आया है। सबसे सुन्दर बात है, हनुमान जी द्वारा अपने प्रभु के लिये किये गये सेवा कार्य का वर्णन। हनुमान जी श्रीराम की सेवा में हैं, और सेवा के लिये कैसा उत्साह, बुद्धि व बल चाहिये, वह सब इसमें वर्णित है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13–15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

जुलाई 27–30	स्वामी निरंजन के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015–मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1–30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1–जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3–20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र–मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।